

Chapter सोलह

परीक्षित ने कलियुग का सत्कार किस तरह किया

सूत उवाच

ततः परीक्षिद् द्विजवर्यशिक्षया

महीं महाभागवतः शशास ह ।

यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः

समादिशन् विप्र महद्गुणस्तथा ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; ततः—तत्पश्चात्; परीक्षित्—महाराज परीक्षित ने; द्विज-वर्य—श्रेष्ठ ब्राह्मण; शिक्षया—अपने उपदेशों से; महीम्—पृथ्वी को; महा-भागवतः—परम भक्त; शशास—शासन किया; ह—भूतकाल में; यथा—जैसा उन्होंने कहा था; हि—निश्चय ही; सूत्याम्—उनके जन्म के समय; अभिजात-कोविदाः—जन्म के समय पटु ज्योतिषी; समादिशन्—अभिमत व्यक्त किया; विप्र—हे ब्राह्मण; महत्-गुणः—महान् गुण; तथा—उसी के अनुसार सत्य ।

सूत गोस्वामी ने कहा : हे विद्वान् ब्राह्मणों, तब महाराज परीक्षित श्रेष्ठ द्विज ब्राह्मणों के आदेशों के अनुसार महान् भगवद्भक्त के रूप में संसार पर राज्य करने लगे। उन्होंने उन महान् गुणों के द्वारा शासन चलाया, जिनकी भविष्यवाणी उनके जन्म के समय पटु ज्योतिषियों ने की थी।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित के जन्म के समय निपुण ज्योतिषी ब्राह्मणों ने उनके कुछ गुणों की भविष्यवाणी की थी। भगवान् के महान् भक्त होने के कारण, महाराज परीक्षित में इन सारे गुणों का विकास हो सका। असली योग्यता भगवद्भक्त होना है और धीरे-धीरे सभी ग्राह्य गुणों का विकास होता जाता है। महाराज परीक्षित *महाभागवत* या प्रथम श्रेणी के भक्त थे, जो न केवल भक्ति के विज्ञान में पटु थे अपितु अपने दिव्य उपदेशों से अन्यो को भी भक्त बनाने में समर्थ थे। अतएव महाराज परीक्षित प्रथम श्रेणी के भक्त थे और इस तरह वे बड़े-बड़े मुनियों तथा विद्वान् ब्राह्मणों से राय लिया करते थे, जो उन्हें शास्त्रों के आधार पर सलाह दे सकें कि राज्य का शासन किस तरह चलाया जाय। ऐसे महान् राजा आजकल के निर्वाचित प्रशासकों से अधिक जिम्मेदार होते थे, क्योंकि वे महापुरुषों द्वारा वैदिक साहित्य में संकलित अनुदेशों का पालन करके उनके प्रति कृतज्ञ रहते थे। तब ऐसे अव्यावहारिक मूर्खों की आवश्यकता नहीं होती थी, जो नित्य ही नये-नये विधान बनाएँ और अपनी सुविधा को ध्यान में रखकर उसे बारम्बार बदलते रहें। ऐसे विधि-विधान तो मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर तथा अन्य मुक्त मुनियों द्वारा पहले ही स्थापित किये जा चुके थे और उनका प्रचलन सभी युगों तथा सभी स्थानों के लिए उपयुक्त था। अतएव सारे विधि-विधान प्रामाणिक थे और किसी त्रुटि या दोष से रहित होते थे। महाराज परीक्षित जैसे राजाओं की अपनी सलाहकार-समिति होती थी और इस समिति के सदस्य या तो ऋषि-मुनि होते थे या प्रथम श्रेणी के ब्राह्मण होते थे। वे कोई वेतन नहीं लेते थे, न उन्हें ऐसे वेतन की आवश्यकता ही रहती थी। *राजा बिना किसी व्यय के श्रेष्ठ सलाह प्राप्त करता था।* वे स्वयं *समदर्शी* होते थे—सबों के प्रति समदर्शी, चाहे मनुष्य हो या पशु। वे राजा को ऐसी सलाह नहीं देते थे कि मनुष्य को तो सुरक्षा प्रदान की जाय और बेचारे पशुओं का वध किया जाय। समिति के ऐसे सदस्य न तो मूर्ख होते थे, न दिवास्वप्न देखने वाले मूर्खों के प्रतिनिधि होते थे। वे सभी स्वरूपसिद्ध होते थे और वे भलीभाँति जानते थे कि किस तरह राज्य के सारे जीव इस जीवन में तथा

अगले जीवन में सुखी रह सकते हैं। वे 'खाओ, पियो और मौज करो' जैसी भोगवादी विचारधारा के समर्थक न थे। वे वास्तविक अर्थ में विचारक होते थे और यह भलीभाँति जानते थे कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है। इन सारे प्रतिबन्धों के अन्तर्गत राजा की सलाहकार समिति सही निर्देश देती थी और राजा या प्रशासनाधिकारी स्वयं योग्य भगवद्भक्त होने के कारण राज्य के कल्याण के लिए उन आदेशों की छानबीन करके उनका पालन करता था। महाराज युधिष्ठिर अथवा महाराज परीक्षित के समय का राज्य वास्तव में जन-कल्याणकारी राज्य होता था, क्योंकि राज्य में कोई भी दुखी नहीं रहता था, चाहे वह मनुष्य हो या पशु। महाराज परीक्षित विश्व के जनकल्याणकारी राज्य के एक आदर्श राजा थे।

स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ।

जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत् सुतान् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; उत्तरस्य—राजा उत्तर की; तनयाम्—पुत्री को; उपयेमे—विवाह किया; इरावतीम्—इरावती को; जनमेजय-आदीन्—महाराज जनमेजय तथा अन्य; चतुरः—चार; तस्याम्—उसमें; उत्पादयत्—जन्म दिया; सुतान्—पुत्रों को।

राजा परीक्षित ने राजा उत्तर की पुत्री इरावती से विवाह किया और उससे उन्हें ज्येष्ठ पुत्र महाराज जनमेजय सहित चार पुत्र प्राप्त हुए।

तात्पर्य : महाराज उत्तर विराट के पुत्र तथा महाराज परीक्षित के मामा थे। इरावती महाराज उत्तर की पुत्री होने से, महाराज परीक्षित की ममेरी बहन थी, लेकिन यदि ममेरे भाइयों तथा बहनों का गोत्र अर्थात् परिवार एक न हो, तो उन्हें विवाह करने की अनुमति होती थी। विवाह की वैदिक पद्धति में गोत्र या परिवार पर बल दिया जाता था। अर्जुन ने भी सुभद्रा से विवाह किया था, यद्यपि वह उनकी ममेरी बहिन लगती थी।

जनमेजय—राजर्षियों में से एक तथा महाराज परीक्षित के विख्यात पुत्र। इनकी माता का नाम इरावती अथवा कुछ लोगों के अनुसार माद्रवती था। महाराज जनमेजय के दो पुत्र हुए जिनके नाम थे ज्ञातानीक तथा शंकुकर्ण। उन्होंने कुरुक्षेत्र तीर्थस्थल पर अनेक यज्ञ किये। उनके तीन छोटे भाइयों के नाम श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन-द्वितीय थे। उन्होंने तक्षला (अजन्ता) पर आक्रमण किया और अपने महान् पिता महाराज परीक्षित को दिये गये अवैध शाप का बदला लेने का निश्चय किया। उन्होंने

अपने पिता को डँसनेवाले तक्षक सहित सर्पों की सम्पूर्ण जाति को विनष्ट करने के लिए सर्प-यज्ञ किया। किन्तु अनेक प्रभावशाली देवताओं तथा मुनियों के आग्रह पर, उन्हें सम्पूर्ण सर्प जाति को विनष्ट करने का अपना निर्णय बदलना पड़ा, किन्तु यज्ञ बन्द करने के बावजूद उन्होंने यज्ञ से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति को समुचित पुरस्कार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया। इस उत्सव में महामुनि व्यासदेव भी उपस्थित थे और उन्होंने स्वयं राजा के समक्ष कुरुक्षेत्र युद्ध का सारा वृत्तान्त सुनाया। बाद में, व्यासदेव की आज्ञा से उनके शिष्य वैशम्पायन ने राजा को *महाभारत* सुनाया। वे अपने पिता के असामयिक निधन से अत्यधिक दुखी थे और उन्हें दुबारा देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते थे। अतएव उन्होंने महामुनि व्यासदेव से अपनी इच्छा व्यक्त की। व्यासदेव ने उनकी इच्छा पूरी की। उनके पिता उनके समक्ष उपस्थित हुए और उन्होंने अपने पिता एवं व्यासदेव का पूजन बड़े ही आदर तथा धूमधाम से किया। उन्होंने उस यज्ञ में उपस्थित समस्त ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रसन्न होकर मुक्तहस्त दान दिया।

आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान् ।

शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षिगोचराः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

आजहार—सम्पन्न किया; अश्व-मेधान्—अश्वमेध यज्ञ; त्रीन्—तीन; गङ्गायाम्—गंगा तट पर; भूरि—पर्याप्त; दक्षिणान्—दक्षिणाएँ, पुरस्कार; शारद्वतम्—कृपाचार्य को; गुरुम्—गुरु; कृत्वा—चुनकर; देवाः—देवतागण; यत्र—जहाँ पर; अक्षि—आँखें; गोचराः—दृष्टिगत।

महाराज परीक्षित ने कृपाचार्य को अपना गुरु चुनने के बाद गंगा के तट पर तीन अश्वमेध यज्ञ किये। इन्हें आगन्तुकों एवं निमंत्रितों को पर्याप्त दक्षिणा देकर संपन्न किया गया। इन यज्ञों में सामान्य लोग भी देवताओं का दर्शन पा सके।

तात्पर्य : इस श्लोक से लगता है कि स्वर्ग के निवासियों द्वारा अन्तर्ग्रहीय यात्रा सुगम है। *भागवत* में अनेक स्थलों पर हमने देखा है कि प्रभावशाली राजाओं तथा सम्राटों द्वारा सम्पन्न होनेवाले यज्ञों में स्वर्ग के निवासी भी भाग लेने के लिए पृथ्वी पर आया करते थे। यहाँ भी हम पाते हैं कि महाराज परीक्षित के अश्वमेध यज्ञ में अन्य ग्रहों के देवता यज्ञोत्सव के कारण सामान्य व्यक्ति को भी दिखाई दे रहे थे। देवता सामान्यतया आम लोगों को दृष्टिगोचर नहीं होते, ठीक उसी तरह जिस तरह भगवान् नहीं दिखते। किन्तु जिस तरह भगवान् सामान्य व्यक्ति के लिए दृश्य होने के निमित्त अपनी अहैतुकी कृपा से

अवतरित होते हैं, इसी तरह देवता भी सामान्य व्यक्ति को अपनी कृपा से दृष्टिगोचर हुए। यद्यपि स्वर्ग के निवासी इस पृथ्वी के लोगों की आँखों से दिखते नहीं, किन्तु यह महाराज परीक्षित का प्रताप था कि देवताओं ने दृश्य होना स्वीकार कर लिया। राजागण ऐसे यज्ञों के समय जी खोलकर खर्च करते थे, जिस तरह बादल पानी बरसाते हैं। बादल आखिर पानी का दूसरा रूप ही तो है, अथवा दूसरे शब्दों में पृथ्वी का पानी ही बादलों में रूपान्तरित होता है। इसी प्रकार ऐसे यज्ञों में राजाओं द्वारा दिया गया दान प्रजा से ही संग्रह किये गये कर का दूसरा रूप होता है। किन्तु जिस तरह जब प्रचुर वर्षा होती है, तो वह आवश्यकता से अधिक प्रतीत होती है, उसी तरह ऐसे राजाओं द्वारा दिया दान भी प्रजा की आवश्यकताओं से अधिक प्रतीत होता है। संतुष्ट प्रजा कभी राजा के विरुद्ध संघर्ष नहीं करती, अतएव राजतंत्रीय राज्य को बदलने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

महाराज परीक्षित जैसे राजा के लिए भी मार्गदर्शन के लिए गुरु की आवश्यकता थी। ऐसे मार्गदर्शन के बिना आध्यात्मिक जीवन में प्रगति कर पाना सम्भव नहीं है। गुरु को प्रामाणिक होना चाहिए और जो आत्म-साक्षात्कार के लिए इच्छुक रहते हैं, उन्हें वास्तविक सफलता प्राप्त करने के लिए प्रामाणिक गुरु के पास पहुँचना चाहिए।

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ।

नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

निजग्राह—पर्याप्त दण्डित; ओजसा—पराक्रम से; वीरः—वीर पुरुष; कलिम्—इस युग के स्वामी, कलि को; दिग्विजये—विश्व को विजित करने के मार्ग पर; क्वचित्—एक बार; नृप-लिङ्ग-धरम्—राजा का वेश धारण करके विचरण करने वाला; शूद्रम्—नीच जाति का; घ्नन्तम्—चोट पहुँचाते हुए; गो-मिथुनम्—गाय तथा बैल की जोड़ी को; पदा—पाँव में।

एक बार, जब महाराज परीक्षित विश्व-दिग्विजय करने निकले, तो उन्होंने देखा कि कलियुग का स्वामी, जो शूद्र से भी निम्न था, राजा का वेश धारण करके गाय तथा बैल की जोड़ी के पाँवों पर प्रहार कर रहा था। राजा ने उसे पर्याप्त दण्ड देने के लिए तुरन्त पकड़ लिया।

तात्पर्य : दिग्विजय करने के लिए राजा के बाहर निकलने का उद्देश्य आत्मश्लाघा नहीं है। महाराज परीक्षित सिंहासन पर बैठने के बाद दिग्विजय करने निकले थे, किन्तु यह अन्य राजाओं के उत्पीड़न के उद्देश्य से नहीं था। वे विश्व के सम्राट थे और समस्त छोटे-छोटे राज्य उनके अधीन ही थे।

उनका बाहर जाने का उद्देश्य यह देखना था कि क्या राज्य का शासन भगवद्भावनामय ढंग से चल रहा था कि नहीं? भगवान् का प्रतिनिधि होने के कारण राजा को भगवान् की इच्छाओं को भलीभाँति पूरा करना होता है। इसमें आत्मश्लाघा का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव ज्योंही महाराज परीक्षित ने एक निम्न जाति के मनुष्य को राजा के वेश में गाय तथा बैल की जोड़ी के पाँव पर प्रहार करते देखा, तो उन्होंने तुरन्त उसे बन्दी बनाकर दण्ड दिया। राजा न तो सबसे महत्त्वपूर्ण पशु गाय का अनादर होते सह सकता है, न वह सबसे महत्त्वपूर्ण मनुष्य ब्राह्मण का अनादर सह सकता है। मानव सभ्यता का अर्थ है, ब्राह्मण संस्कृति को आगे बढ़ाना और उसके पालन के लिए गोरक्षा अनिवार्य है। गाय के दूध में चमत्कार है, क्योंकि इसमें उच्चतर उपलब्धि के लिए मनुष्य की शारीरिक स्थिति को बनाये रखने के लिए सभी आवश्यक विटामिन रहते हैं। ब्राह्मण संस्कृति तभी प्रगति कर सकती है, जब मनुष्य को सतोगुण विकसित करने की शिक्षा दी जाय और उसके लिए दूध, फल तथा अन्न का तैयार किया गया भोजन मूल आवश्यकता है। महाराज परीक्षित यह देखकर चकित थे कि एक काला शूद्र, राजा का वेश बनाये, मानव समाज के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पशु गाय के साथ दुर्व्यवहार कर रहा था।

कलियुग का अर्थ है, कुव्यवस्था तथा कलह। इस कुव्यवस्था तथा कलह का मूल कारण यह है कि निम्न श्रेणी के निकम्मे व्यक्ति, जिनकी कोई उच्चतर महत्त्वाकांक्षा नहीं है, राज्य के प्रबन्ध में अग्रणी बन जाते हैं। राजा के पद पर ऐसे लोग निश्चित रूप से सर्वप्रथम गाय तथा ब्राह्मण संस्कृति को हानि पहुँचाते हैं, जिससे सारा समाज नरक की ओर आगे बढ़ता है। स्वयं महाराज परीक्षित ने प्रशिक्षित होने के कारण, संसार के सारे झगड़े के मूल कारण की गंध पा ली थी। अतएव वे इसे प्रारम्भ में ही रोक देना चाहते थे।

शौनक उवाच

कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ।
 नृदेवचिह्नधृक्शूद्रकोऽसौ गां यः पदाहनत् ।
 तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

शौनकः उवाच—शौनक ऋषि ने कहा; कस्य—किस; हेतोः—कारण से; निजग्राह—पर्याप्त दण्ड दिया; कलियुग के स्वामी को; दिग्विजये—अपनी विश्व यात्रा के समय; नृपः—राजा; नृ-देव—राजसी व्यक्ति; चिह्न-धृक्—के समान सजा हुआ; शूद्रकः—शूद्रों में भी अधम; असौ—वह; गाम्—गाय को; यः—जो; पदा अहनत्—लात से मारा; तत्—वह सब; कथ्यताम्—कृपा करके कहो; महा-भाग—हे परम भाग्यशाली; यदि—यदि, फिर भी; कृष्ण—कृष्ण विषयक; कथा-आश्रयम्—उनकी कथाओं से सम्बन्धित।

शौनक ऋषि ने पूछा : महाराज परीक्षित ने उसे केवल दण्ड क्यों दिया, जबकि वह शूद्रों में अधम था, उसने राजा का वेश बना रखा था तथा गाय पर पाद प्रहार किया था? ये सब घटनाएं यदि भगवान् कृष्ण की कथा से सम्बन्धित हों, तो कृपया इनका वर्णन करें।

तात्पर्य : शौनक तथा ऋषिगण यह सुनकर विस्मित थे कि पुण्यात्मा महाराज परीक्षित ने अपराधी को केवल दण्डित ही क्यों किया, उसे मार क्यों नहीं डाला? इससे यह सूचित होता है कि महाराज परीक्षित जैसे पुण्यात्मा राजा को चाहिए कि वह ऐसे अपराधी को तुरन्त मार डाले, जो राजा का वेश बनाकर जनता को ठगता है और साथ ही पवित्रतम पशु गाय को अपमानित करने का दुस्साहस करता है। उस काल के ऋषियों ने यह स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि कलियुग के अग्रगामी दिनों में निम्नतम शूद्रों को प्रशासक के रूप में चुना जायेगा और गोवध करने के लिए खुले सुनियोजित कसाईघर खोल दिये जायेंगे। जो हो, यद्यपि ऋषियों को उस शूद्रक के विषय में सुनना अधिक रुचिकर नहीं लगा, जो ठग था तथा गाय का अपमान करने वाला था, फिर भी वे इसके विषय में यह जानने के लिए सुनना चाहते थे कि इसका सम्बन्ध कहीं भगवान् कृष्ण से तो नहीं है। वे केवल कृष्ण कथा में रुचि रखते थे, क्योंकि कृष्ण कथा से जो भी विषय सम्बन्धित हो, वह श्रवण करने योग्य होता है। भागवत में समाज विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, सांस्कृतिक मामले इत्यादि के विषय में अनेक प्रसंग हैं, किन्तु वे सभी कृष्ण से सम्बन्धित हैं, अतएव वे सबके सब श्रवणीय हैं। कृष्ण सभी मामलों के शुद्धकर्ता अवयव हैं, चाहे वे जैसे भी हों। इस संसार में हर वस्तु प्रकृति के तीनों गुणों से उत्पन्न होने के कारण अशुद्ध है। किन्तु कृष्ण शुद्धकर्ता तत्त्व हैं।

अथवास्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम् ।

किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अथवा—अन्यथा; अस्य—उनका (भगवान् कृष्ण का); पद-अभोज—चरणकमल; मकरन्द-लिहाम्—कमल पुष्प के मधु को चाटनेवाले; सताम्—निरन्तर जीवित रहनेवालों के; किम् अन्यैः—अन्य किसी वस्तु से क्या लाभ; असत्—भ्रामक; आलापैः—विषय, प्रसंग; आयुषः—आयु में; यत्—जो है; असत्-व्ययः—जीवन का अपव्यय।

भगवान् के भक्त भगवान् के चरणकमलों से प्राप्त मधु के चाटने के आदी हैं। उन कथा प्रसंगों से क्या लाभ जो मनुष्य के बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ नष्ट करें?

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण तथा उनके भक्त दोनों ही दिव्य स्तर पर रहते हैं, अतएव भगवान् कृष्ण तथा उनके शुद्ध भक्तों की कथाएँ समान रूप से उत्तम होती हैं। यद्यपि कुरुक्षेत्र का युद्ध राजनीति तथा कूटनीति से भरा हुआ है, परन्तु इसकी कथाएँ भगवान् श्रीकृष्ण से सम्बन्धित हैं, अतएव *भगवद्गीता* सारे विश्व में पूजित है। राजनीति, अर्थशास्त्र या समाज विज्ञान जो संसारियों के लिए भौतिकतामय हों, उनके उच्छेदन की कोई आवश्यकता नहीं है। शुद्ध भक्त के लिए, जो वास्तव में भगवान् से जुड़ा है, ऐसी संसारी वस्तुएँ दिव्य होती हैं, यदि वे कृष्ण या उनके शुद्ध भक्तों के साथ जुड़ी हों। हम पाण्डवों के कार्यकलापों के सम्बन्ध में कह-सुन चुके हैं और अब हम महाराज परीक्षित की कथाओं के विषय में बातें कर रहे हैं, किन्तु ये सब कथाएँ भगवान् श्रीकृष्ण से सम्बन्धित हैं, अतएव ये सबकी सब दिव्य हैं और शुद्ध भक्त इन्हें बड़ी रुचि से सुनते हैं। हम इस बात को भीष्मदेव की स्तुतियों के प्रसंग में पहले ही बता चुके हैं।

हमारी आयु बहुत लम्बी नहीं होती और ऐसा भी कुछ निश्चित नहीं है कि हमें कब अगली मंजिल के लिए हर वस्तु को छोड़ने के लिए आदेश मिल जाँय। अतएव यह हमारा परम धर्म है कि हम कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी विषय में एक क्षण भी व्यर्थ न बिताएँ। कोई भी विषय कितना ही रोचक क्यों न हो, यदि वह कृष्ण से सम्बन्धित नहीं है, तो सुनने योग्य नहीं होता।

आध्यात्मिक ग्रह गोलोक वृन्दावन, जो भगवान् कृष्ण का सनातन धाम है, कमल पुष्प के गुच्छे के आकार का है। जब भगवान् किसी एक भौतिक ग्रह में भी अवतरित होते हैं, तब वे अपने निजी धाम को यथारूप में प्रकट करके ही ऐसा करते हैं। इस प्रकार उनके चरण सदैव उसी कमलदल के बड़े गुच्छे पर रहते हैं। उनके चरण कमल पुष्प के समान ही सुन्दर हैं, इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि भगवान् कृष्ण के पाँव कमल-स्वरूप हैं।

जीव वैधानिक रूप से शाश्वत है। वह भौतिक शक्ति के सम्पर्क में रहने के कारण जन्म तथा मृत्यु के भँवर में पड़ा हुआ है। ऐसी भौतिक शक्ति से छूटने पर जीव मुक्त हो जाता है और भगवद्धाम जाने के योग्य बन जाता है। जो लोग अपना शरीर बदले बिना सदा-सदा के लिए जीवित रहना चाहते हैं, उन्हें कृष्ण तथा उनके भक्तों की कथाओं के अतिरिक्त अन्य किसी कथा में अपना बहुमूल्य समय नहीं गँवाना चाहिए।

क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ।
इहोपहृतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

क्षुद्र—अत्यन्त छोटी; आयुषाम्—आयु वाले; नृणाम्—मनुष्यों का; अङ्ग—हे सूत गोस्वामी; मर्त्यानाम्—मरनेवालों का; ऋतम्—शाश्वत् जीवन; इच्छताम्—चाहनेवालों का; इह—यहाँ; उपहृतः—उपस्थित होने के लिए बुलाया गया; भगवान्—भगवान् का प्रतिनिधित्व करते हुए; मृत्युः—मृत्यु के नियंत्रक, यमराज; शामित्र—दमन करते हुए; कर्मणि—कार्यों को।

हे सूत गोस्वामी, मनुष्यों में से कुछ ऐसे हैं, जो मृत्यु से मुक्ति पाने के और शाश्वत जीवन प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं। वे मृत्यु के नियंत्रक यमराज को बुलाकर वध किये जाने की क्रिया से बच जाते हैं।

तात्पर्य : जैसे-जैसे जीव निम्नतर पशु जीवन से उच्चतर मनुष्य जीवन में विकसित होकर धीरे-धीरे उच्चतर बुद्धि प्राप्त करता है, त्यों-त्यों वह मृत्यु के पाश से मुक्त होने के लिए उत्सुक रहता है। आधुनिक विज्ञानी शरीर सम्बन्धी रासायनिक ज्ञान की प्रगति द्वारा मृत्यु से बचना चाहते हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश मृत्यु के नियंत्रक यमराज इतने क्रूर हैं कि वे खुद उस विज्ञानी तक को नहीं छोड़ते। जो विज्ञानी वैज्ञानिक ज्ञान की प्रगति से मृत्यु रोकने का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है, वह खुद यमराज के बुलाने पर मृत्यु का शिकार बन जाता है। मृत्यु रोकने की बात तो कोसों दूर रही, कोई जीवन की लघु अवधि को क्षण के एक अंश भर भी नहीं बढ़ा सकता। यदि यमराज की क्रूर वध-क्रिया को रोकने की कोई आशा है, तो यही है कि उन्हें बुलाकर भगवान् के पवित्र नाम का श्रवण तथा कीर्तन कराया जाय। यमराज भगवान् के परम भक्त हैं और उन्हें उन शुद्ध भक्तों द्वारा कीर्तनों तथा यज्ञों में आमंत्रित किया जाना अच्छा लगता है, जो भगवान् की भक्ति में निरन्तर लगे रहते हैं। इस तरह, शौनक आदि ऋषियों

ने नैमिषारण्य में सम्पन्न हो रहे यज्ञ में यमराज को सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया। यह उन लोगों के लिए अच्छा हुआ, जो मरना नहीं चाहते थे।

न कश्चिन्म्रियते तावद् यावदास्त इहान्तकः ।

एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः ।

अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; कश्चित्—कोई; म्रियते—मरेगा; तावत्—तब तक; यावत्—जब तक; आस्ते—उपस्थित हैं; इह—यहाँ; अन्तकः—जीवन का अन्त करने वाले; एतत्—यह; अर्थम्—कारण; हि—निश्चय ही; भगवान्—भगवान् के प्रतिनिधि; आहूतः—आमंत्रित; परम-ऋषिभिः—बड़े-बड़े ऋषियों द्वारा; अहो—ओह; नृ-लोके—मानव समाज में; पीयेत—पीने दो; हरि-लीला—भगवान् की दिव्य लीलाएँ; अमृतम्—अमृत; वचः—कथाएँ।

जब तक सबों की मृत्यु के कारण यमराज यहाँ पर उपस्थित हैं, तब तक किसी की मृत्यु नहीं होगी। ऋषियों ने मृत्यु के नियंत्रक यमराज को आमंत्रित किया है, जो भगवान् के प्रतिनिधि हैं। उनकी पकड़ में आनेवाले सारे जीवों को भगवान् की दिव्य लीलाओं की इस वार्ता के रूप में मृत्युरहित अमृत का श्रवण करने का लाभ उठाना चाहिए।

तात्पर्य : प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसकी मृत्यु न हो, किन्तु वह यह नहीं जानता कि मृत्यु से छुटकारा कैसे पाया जाय। मृत्यु से बचने की रामबाण औषधि है भगवान् की उन अमृत-तुल्य लीलाओं का श्रवण करने के लिए अपने को अभ्यस्त करना, जो क्रमबद्ध रूप में *श्रीमद्भागवत* में कही गई हैं। अतएव यहाँ पर यह सलाह दी गई है कि कोई भी मनुष्य, जो मृत्यु से मुक्ति पाने का अभिलाषी है, उसे शौनक आदि ऋषियों द्वारा संस्तुत जीवन-शैली अपनानी चाहिए।

मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै ।

निद्रया हियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

मन्दस्य—आलसी का; मन्द—अल्प; प्रज्ञस्य—बुद्धि का; वयः—आयु; मन्द—लघु; आयुषः—आयु का; च—तथा; वै—ठीक-ठीक; निद्रया—सोने में; हियते—बीत जाती है; नक्तम्—रात्रि; दिवा—दिन; च—भी; व्यर्थ—बेकार; कर्मभिः—कार्यों में।

अल्प बुद्धि तथा कम आयु वाले आलसी मनुष्य रात को सोने में तथा दिन को व्यर्थ के कार्यों में बिता देते हैं।

तात्पर्य : अल्पज्ञ लोग मनुष्य-जीवन के वास्तविक महत्त्व को नहीं जानते। भौतिक प्रकृति के द्वारा जीव पर दुखदायी कठोर नियम लागू करने की प्रक्रिया के दौरान जीव को मनुष्य-जीवन प्रदान करना प्रकृति का एक विशेष उपहार है। यह जीवन के सर्वोच्च वरदान को प्राप्त करने, अर्थात् बारम्बार होने वाले जन्म तथा मृत्यु के बन्धन से निकलने के लिए अच्छा अवसर होता है। बुद्धिमान लोग, बन्धन से निकलने के लिए कठिन प्रयत्न द्वारा इस महत्त्वपूर्ण उपहार की रक्षा करते हैं, लेकिन अल्पज्ञ लोग आलसी होते हैं और इस उपहारस्वरूप मानव-शरीर को भव-बन्धन से मोक्ष पाने के लिए प्रयोग करने में असमर्थ रहते हैं। वे तो तथाकथित आर्थिक विकास में अधिक रुचि दिखाते हैं और क्षणिक शरीर के इन्द्रिय-भोग हेतु ही जीवन भर कठिन श्रम करते रहते हैं। प्रकृति ने इन्द्रिय-भोग की अनुमति तो पशुओं को भी दे रखी है और इस तरह मनुष्य को भी, अपने पूर्वजन्म या इस जन्म के अनुसार, कुछ न कुछ इन्द्रियभोग तो दिया ही गया है। लेकिन मनुष्य को इतना अवश्य समझना चाहिए कि इन्द्रियभोग इस मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य नहीं है। यहाँ कहा गया है कि दिन में मनुष्य व्यर्थ ही कार्य करता है, क्योंकि एकमात्र लक्ष्य इन्द्रियभोग रहता है। हम विशेष करके बड़े-बड़े शहरों में तथा औद्योगिक नगरों में देख सकते हैं कि किस तरह मनुष्य व्यर्थ के कार्यों में लगा रहता है। मानवीय शक्ति से तरह-तरह की वस्तुएँ निर्मित की जाती हैं, किन्तु वे सब इन्द्रियभोग के लिए ही होती हैं, भवबन्धन से छूटने के लिए नहीं। दिन भर कठिन श्रम करने के बाद, थका-हारा मनुष्य रात में या तो सो जाता है या संभोग करता है। अल्पज्ञों के लिए भौतिकतावादी सभ्य जीवन का यही कार्यक्रम होता है। अतएव यहाँ पर उन्हें आलसी, अभागे तथा अल्पायु वाले कहे गये हैं।

सूत उवाच

यदा परीक्षित् कुरुजाङ्गलेऽवसत्

कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ।

निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः

शरासनं संयुगशौण्डिराददे ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; यदा—जब; परीक्षित्—महाराज परीक्षित; कुरु-जाङ्गले—कुरु प्रदेश की राजधानी में; अवसत्—रहते थे; कलिम्—कलियुग के लक्षण; प्रविष्टम्—प्रवेश किया; निज-चक्रवर्तिने—अपनी सीमा में; निशम्य—इस तरह का सुनकर; वार्ताम्—समाचार को; अनति-प्रियाम्—अधिक रोचक नहीं; ततः—तत्पश्चात्; शरासनम्—धनुष-बाण; संयुग—अवसर पाकर; शौण्डिः—वीरोचित कार्य-कलाप; आददे—ग्रहण किया।

सूत गोस्वामी ने कहा : जब महाराज परीक्षित कुरु-साम्राज्य की राजधानी में रह रहे थे, तो अपने राज्य की सीमा के भीतर कलियुग के लक्षणों को प्रवेश होते देखा। जब उन्हें इसका पता चला, तो उन्हें यह रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। लेकिन इससे उन्हें उसके विरुद्ध लड़ने का अवसर अवश्य प्राप्त हो सका। अतएव उन्होंने अपना धनुष-बाण उठाया और सैनिक कार्यवाही के लिए सन्नद्ध हो गये।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित का राज्य-प्रशासन इतना चुस्त था कि वे अपनी राजधानी में शान्तिपूर्वक रह रहे थे। लेकिन उन्हें समाचार मिल गया कि कलियुग के लक्षण उनकी राज्य सीमा में प्रवेश पा चुके हैं, और उन्हें यह समाचार अच्छा नहीं लगा। कलियुग के लक्षण क्या हैं? ये इस प्रकार हैं: (१) स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध, (२) मांस-भक्षण की लत, (३) मादक द्रव्य सेवन (नशा); तथा (४) द्यूत-क्रीड़ा में रुचि। कलियुग का शाब्दिक अर्थ कलह का युग है और मानव समाज में उपर्युक्त चारों लक्षण सभी प्रकार के कलह के मुख्य कारण होते हैं। महाराज परीक्षित ने सुना कि उनके राज्य के कुछ लोग पहले ही उन लक्षणों के शिकार हो चुके हैं, अतएव वे चाह रहे थे कि अशान्ति के ऐसे कारणों के विरुद्ध अविलम्ब कदम उठाये जाँय। इसका अर्थ यह हुआ कि कम से कम महाराज परीक्षित के राज्य-काल तक जन-जीवन में ऐसे लक्षण व्यावहारिक रूप से अज्ञात थे और ज्योंही उनका थोड़ा पता चला, त्योंही वे उन्हें समूल नष्ट कर देना चाहते थे। यह समाचार उन्हें रुचिकर नहीं लगा, लेकिन एक दृष्टि से महाराज परीक्षित को युद्ध करने का यह अवसर मिल रहा था। यद्यपि छोटे-छोटे राज्यों से लड़ने की आवश्यकता न थी, क्योंकि वे सभी शान्तिपूर्वक उनके अधीन थे, लेकिन कलियुग के दुष्टों ने उन्हें अवसर प्रदान किया कि वे अपनी शूरता का प्रदर्शन कर सकें। पक्का क्षत्रिय, युद्ध का अवसर पाते ही, प्रफुल्लित होता है, जिस तरह खेल के मैच का अवसर उपस्थित होने पर खिलाड़ी उत्सुक हो उठता है। यह कोई तर्क नहीं है कि कलियुग में ऐसे लक्षण पूर्व-निर्धारित होते हैं। यदि ऐसा होता तो फिर ऐसे लक्षणों के विरुद्ध चढ़ाई करने की क्या आवश्यकता थी? ऐसे तर्क

आलसी तथा अभागे लोग ही देते हैं। वर्षाऋतु में वर्षा अवश्यम्भावी है; फिर भी लोग अपनी सुरक्षा के लिये सावधानी बरतते हैं। इसी प्रकार कलियुग में सामाजिक जीवन में उपर्युक्त लक्षणों का प्रविष्ट होना अवश्यम्भावी है, लेकिन यह राज्य का कर्तव्य है कि नागरिकों को कलियुग के एजेण्टों के सम्पर्क से बचाएँ। महाराज परीक्षित कलि के लक्षणों में शरीक होनेवाले दुष्टों को दण्डित करना चाह रहे थे और इस तरह धर्मात्मा एवं निर्दोष नागरिकों को बचाना चाहते थे। राजा का धर्म है कि वह ऐसी सुरक्षा प्रदान करे और यह ठीक ही था कि महाराज परीक्षित लड़ने के लिए तैयार हो गये।

स्वलङ्कृतं श्यामतुरङ्गयोजितं
रथं मृगेन्द्रध्वजमाश्रितः पुरात् ।
वृतो रथाश्वद्विपत्तियुक्तया
स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सु-अलङ्कृतम्—अच्छी तरह से सजकर; श्याम—काले; तुरङ्ग—घोड़े; योजितम्—जोते हुए; रथम्—रथ को; मृग-इन्द्र—सिंह; ध्वजम्—ध्वजा लगी; आश्रितः—संरक्षण में; पुरात्—राजधानी से; वृतः—घिरा हुआ; रथ—सारथी; अश्व—अश्वारोही दल; द्विपत्ति—हाथी; युक्तया—इस तरह सुसज्जित; स्व-सेनया—पैदल सेना के साथ; दिग्विजयाय—जीतने के लिए; निर्गतः—बाहर गया।

महाराज परीक्षित काले घोड़ों द्वारा खींचे जानेवाले रथ पर सवार हो गये। उनकी ध्वजा पर सिंह का चिन्ह अंकित था। इस प्रकार सुसज्जित होकर तथा सारथियों, अश्वारोहियों, हाथीयों तथा पैदल सैनिकों से घिरे हुए, उन्होंने सभी दिशाएँ जीतने के लिए राजधानी से प्रस्थान किया।

तात्पर्य : महाराज परीक्षित अपने पितामह अर्जुन से इस बात में भिन्न थे कि उनके रथ को खींचनेवाले घोड़े श्वेत रंग के न होकर काले रंग के थे। उनकी ध्वजा का चिह्न सिंह था, जबकि उनके पितामह की ध्वजा पर हनुमानजी चिह्नित थे। महाराज परीक्षित जैसा राजसी जुलूस जिसमें सुसज्जित रथ, घोड़े, हाथी, पैदल सिपाही तथा बैण्ड थे, नेत्रों को अत्यन्त सुहावना लगने वाला था, लेकिन साथ ही ऐसी सभ्यता का प्रतीक है, जो लड़ाई के मैदान में भी सौन्दर्य-परक था।

भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान् कुरून् ।
किम्पुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

भद्राश्वम्—भद्राश्व; केतुमालम्—केतुमाल; च—भी; भारतम्—भारत; च—तथा; उत्तरान्—उत्तरी देश; कुरून्—कुरुवंश का राज्य; किम्पुरुष-आदीनि—हिमालय की उत्तरी दिशा के आगे का देश; वर्षाणि—पृथ्वी-लोक के भागों को; विजित्य—जीतकर; जगृहे—वसूल किया; बलिम्—भेंटें।

तब महाराज परीक्षित ने पृथ्वी-लोक के समस्त भागों—भद्राश्व, केतुमाल, भारत, कुरुजांगल का उत्तरी भाग, किम्पुरुष इत्यादि को जीत लिया और उनके शासकों से भेंटें वसूल कीं।

तात्पर्य : भद्राश्व—यह मेरु पर्वत के निकट का द्वीप है और यह गंधमादन पर्वत से खारे पानी के समुद्र तक फैला हुआ है। महाभारत (भीष्म पर्व ७.१४-१८) में इस द्वीप का वर्णन है। संजय ने धृतराष्ट्र को इसका वर्णन सुनाया था।

महाराज युधिष्ठिर ने भी इस द्वीप को जीता था और यह प्रान्त उनके राज्य की सीमा के भीतर आ गया था। महाराज परीक्षित को पहले ही अपने पितामह द्वारा शासित सारे देशों का सम्राट घोषित किया गया था, लेकिन उन्हें उस समय अपनी श्रेष्ठता स्थापित करनी थी, जब वे ऐसे राज्यों से भेंटें लेने के लिए राजधानी से बाहर निकले थे।

केतुमाल—यह पृथ्वी-लोक सात समुद्रों द्वारा सात द्वीपों में विभक्त है, और जम्बूद्वीप नामक केन्द्रीय द्वीप नौ वर्षों में अर्थात् नौ भागों में आठ विशाल पर्वतों द्वारा विभाजित किया जाता है। इनमें से भारतवर्ष भी एक है और केतुमाल को भी उपर्युक्त वर्षों में एक बताया गया है। ऐसा कहा जाता है कि केतुमाल वर्ष की स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर होती हैं। इस 'वर्ष' अर्थात् भू-भाग को अर्जुन ने भी जीता था। इस भू-भाग का वर्णन महाभारत (सभा-पर्व २८.६) में उपलब्ध है।

ऐसा कहा जाता है कि विश्व का यह भाग मेरु पर्वत के पश्चिम में स्थित है और इस प्रान्त के निवासी दस हजार वर्षों तक जीवित रहते थे (भीष्म-पर्व ६.३१)। इस भाग के मनुष्य सुनहरे रंग के होते हैं और स्त्रियाँ स्वर्ग की अप्सराओं के समान होती हैं। यहाँ के निवासी सभी प्रकार के रोगों तथा शोको से मुक्त होते हैं।

भारतवर्ष—संसार का यह भाग भी जम्बूद्वीप के नौ वर्षों में से एक है। भारतवर्ष का वर्णन महाभारत (भीष्म पर्व, अध्याय ९ और १०) में दिया हुआ है।

जम्बूद्वीप के मध्य में इलावृत वर्ष है और इलावृतवर्ष के दक्षिण में हरिवर्ष है। इन वर्षों का वर्णन महाभारत (सभापर्व २८.७-८) में इस प्रकार दिया गया है—

नगरांश्च वनांश्चैव नदीश्च विमलोदकाः ।

पुरुषान्देवकल्पांश्च नारीश्च प्रिय-दर्शनाः ॥

अदृष्टपूर्वान् सुभगान् स ददर्श धनञ्जयः ।

सदनानि च शुभ्राणि नारीश्चाप्सरसां निभाः ॥

यहाँ पर उल्लेख है कि इन दोनों वर्षोंकी स्त्रियाँ सुन्दर होती हैं और उनमें से कुछ तो अप्सराओं के तुल्य होती हैं।

उत्तरकुरु—वैदिक भूगोल के अनुसार, जम्बूद्वीप का उत्तरी भाग उत्तरकुरुवर्ष कहलाता है। यह तीन ओर से नमकीन पानी के समुद्र से घिरा है और हिरण्मय वर्ष से शृंगवान् पर्वत के द्वारा विभाजित होता है।

किम्पुरुष वर्ष—बताया जाता है कि यह वर्ष महान् हिमालय पर्वत के उत्तर में स्थित है, जो लम्बाई और ऊँचाई में ८० हजार मील है और चौड़ाई में १६ हजार मील है। विश्व के इन भागों को भी अर्जुन ने जीता था (सभापर्व २८.१-२)। किम्पुरुष लोग दक्ष की पुत्री की सन्तानें हैं। जब महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेघ यज्ञ किया था, तो इन देशों के निवासी भी उस उत्सव में भाग लेने आये थे और उन्होंने सम्राट का यशोगान किया था। विश्व के इस भाग को किम्पुरुष वर्ष या कभी-कभी हिमवती (हिमालय के प्रान्त) कहा जाता है। कहा जाता है कि शुकदेव गोस्वामी इस हिमालय प्रान्त में पैदा हुए थे और वे हिमालय देशों को पार करके भारतवर्ष आये थे।

दूसरे शब्दों में, महाराज परीक्षित ने सारा विश्व जीत लिया था। उन्होंने सभी महाद्वीपों की सभी दिशाओं के समस्त सागरों से सटे हुए भाग अर्थात् पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी भागों को जीत लिया था।

तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ।

प्रगीयमाणं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥ १३ ॥

आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः ।

स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे ॥ १४ ॥

तेभ्यः परमसन्तुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः ।

महाधनानि वासांसि ददौ हारान् महामनाः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तत्र तत्र—जहाँ-जहाँ राजा गये; उपशृण्वानः—निरन्तर सुनते रहे; स्व-पूर्वेषाम्—अपने पुरखों के विषय में; महा-आत्मनाम्—जो सबके सब भगवान् के महान् भक्त थे; प्रगीयमाणम्—इस तरह सम्बोधित करनेवालों को; च—भी; यशः—यश; कृष्ण—भगवान् कृष्ण; माहात्म्य—यशस्वी कार्य; सूचकम्—सूचित करनेवाले; आत्मानम्—अपने को; च—भी; परित्रातम्—उद्धार किया; अश्वत्थाम्नः—अश्वत्थामा का; अस्त्र—हथियार; तेजसः—शक्तिशाली किरणों; स्नेहम्—स्नेह; च—भी; वृष्णि-पार्थानाम्—वृष्णि तथा पृथा की सन्तानों के बीच; तेषाम्—उन सब की; भक्तिम्—भक्ति; च—भी; केशवे—भगवान् कृष्ण में; तेभ्यः—उनको; परम—अत्यधिक; सन्तुष्टः—प्रसन्न; प्रीति—आकर्षण; उज्जृम्भित—हर्ष से खुले; लोचनः—नेत्रोंवाला; महा-धनानि—बहुमूल्य धन; वासांसि—वस्त्र; ददौ—दान में दिया; हारान्—गले के हार; महा-मनाः—विशाल हृदय-वाला।

राजा जहाँ कहीं भी जाते, उन्हें निरन्तर अपने उन महान् पूर्वजों का यशोगान सुनने मिलता, जो सभी भगवद्भक्त थे, तथा भगवान् श्रीकृष्ण के यशस्वी कार्यों की गाथा सुनने को भी मिलती। वे यह भी सुनते कि किस तरह वे स्वयं अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के प्रचण्ड ताप से भगवान् कृष्ण द्वारा बचाये गये थे। लोग वृष्णि तथा पृथा-वंशियों के मध्य अत्यधिक स्नेह का भी उल्लेख करते, क्योंकि पृथा भगवान् केशव के प्रति अत्यधिक श्रद्धावान थी। राजा ने ऐसे यशोगान करनेवालों से अत्यधिक प्रसन्न होकर परम सन्तोष के साथ अपनी आँखें खोलीं। उदारतावश उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें मूल्यवान मालाएँ तथा वस्त्र भेंट किये।

तात्पर्य : राजाओं तथा राज्य के बड़े-बड़े लोगों को स्वागत के सम्बोधनों द्वारा मान दिया जाता है। यह प्रथा अनादिकाल से चली आ रही है। महाराज परीक्षित तो विश्व के विख्यात सम्राटों में से थे, अतएव वे विश्व के जिन-जिन स्थानों में जाते, वहीं उनको मानपत्र दिया जाता। इन सम्बोधनों के विषय होते थे कृष्ण। कृष्ण का अर्थ है कृष्ण तथा उनके सनातन भक्त, जिस तरह राजा का अर्थ होता है, राजा तथा उसके विश्वासपात्र दरबारी-गण।

कृष्ण तथा उनके अनन्य भक्तों को विलग नहीं किया जा सकता। अतएव भक्त के यशोगान का अर्थ है, भगवान् का यशोगान और भगवान् के यशोगान का अर्थ है भक्त का यशोगान। महाराज परीक्षित को अपने पूर्वज, महाराज युधिष्ठिर तथा अर्जुन का यशोगान सुनकर इतनी प्रसन्नता न होती, यदि वे सब भगवान् कृष्ण के कार्यकलापों से जुड़े न होते। भगवान् अपने भक्तों का उद्धार करने

(*परित्राणाय साधूनाम्*) के उद्देश्य से ही अवतरित होते हैं। भक्तगण भगवान् की उपस्थिति से ही महिमामंडित हो जाते हैं, क्योंकि वे भगवान् तथा उनकी विभिन्न शक्तियों के बिना क्षण भर भी नहीं रह सकते। भक्तों के लिए भगवान् अपने कार्यों तथा महिमा से उपस्थित रहते हैं। अतएव जब भगवान् के कार्यों द्वारा उनका यशोगान किया जा रहा था, तो उन्हें भगवान् की उपस्थिति का अनुभव हुआ, विशेष रूप से जब भगवान् ने माता के गर्भ में ही उनकी रक्षा की थी। भगवान् के भक्त कभी संकट में नहीं होते, किन्तु भौतिक जगत में वे ऊपरी रूप से भयावह परिस्थितियों में पड़ जाते हैं, क्योंकि यह जगत पद-पद पर संकटों से भरा हुआ है। अतएव जब भगवान् द्वारा भक्तों की रक्षा होती है, तो भगवान् का यशोगान किया जाता है। यदि पाण्डव जैसे भगवद्भक्त कुरुक्षेत्र के युद्ध में फँसे न होते, तो भगवान् कृष्ण कभी भी *भगवद्गीता* के उद्घोषक के रूप में महिमामण्डित न किये जाते। स्वागत-उद्बोधन में भगवान् के ऐसे समस्त कार्यों का उल्लेख था, अतएव महाराज परीक्षित ने पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होकर ऐसे मानपत्र भेंट करनेवालों को पुरस्कृत किया। आज के तथा तब के स्वागत-उद्बोधन करने में यही अन्तर है कि प्राचीन समय में महाराज परीक्षित जैसे व्यक्ति को ही ऐसे उद्बोधन भेंट किये जाते थे। ऐसे उद्बोधन तथ्यों तथा आँकड़ों से भरे होते थे और जो इन उद्बोधनों को भेंट करता था, वह प्रचुर पुरस्कार पाता था। किन्तु आजकल जो स्वागत-उद्बोधन भेंट किया जाता है, उसमें वास्तविक आँकड़े नहीं रहते। वह किसी पदाधिकारी को प्रसन्न करने के लिए भेंट किया जाता है और प्रायः चापलूसी से भरा हुआ रहता है। और शायद ही ऐसा मान भेंट करनेवाला कभी कोई पुरस्कार पाता हो।

सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्य-

वीरासनानुगमनस्तवनप्रणामान् ।

स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णो-

र्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सारथ्य—सारथी के पद की स्वीकृति; पारषद—राजसूय यज्ञ की सभा में प्रधान पद की स्वीकृति (अग्रत्व); सेवन—भगवान् की सेवा में मन को निरन्तर लगाना; सख्य—भगवान् को मित्र-रूप में सोचना; दौत्य—दूत-पद को स्वीकारना; वीर-आसन—रात्रि में हाथ में तलवार लिए रखवाले के पद की स्वीकृति; अनुगमन—चरणचिह्नों पर चलना; स्तवन—प्रार्थना करना; प्रणामान्—प्रणाम करते हुए; स्निग्धेषु—जो लोग भगवान् की इच्छा के प्रति विनम्र हैं उनको, विनीत; पाण्डुषु—पाण्डवों में;

जगत्—विश्व; प्रणतिम्—जिसकी आज्ञा का पालन किया जाय, उसको; च—तथा; विष्णोः—विष्णु की; भक्तिम्—भक्ति; करोति—करता है; नृ-पतिः—राजा; चरण-अरविन्दे—भगवान् के चरणकमलों पर।

महाराज परीक्षित ने सुना कि जिन भगवान् कृष्ण (विष्णु) की आज्ञा का पालन सारा जगत करता है, उन्होंने अपनी अहैतुकी कृपा से पाण्डु के विनीत पुत्रों की उनकी इच्छानुसार सभी प्रकार से सेवाएँ कीं, जिनमें सारथी बनने से लेकर अग्रपूजा ग्रहण करने तथा दूत बनने, मित्र बनने, रात्रि में रक्षक बनकर सेवाएँ करने के कार्य सम्मिलित हैं। उन्होंने सेवक की भाँति पाण्डवों की आज्ञा का पालन किया तथा आयु में छोटों की भाँति उन्हें प्रणाम किया। जब महाराज परीक्षित ने यह सब सुना, तो वे भगवान् के चरणकमलों की भक्ति से अभिभूत हो उठे।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण पाण्डवों जैसे अनन्य भक्तों के लिए सर्वस्व हैं। वे उनके लिए परमेश्वर, गुरु, आराध्य देव, पथ-प्रदर्शक, सारथी, मित्र, सेवक, दूत तथा जो कुछ भी सोचा जा सकता है, वह सब कुछ थे। इस प्रकार भगवान् ने भी पाण्डवों की भावनाओं का प्रतिदान किया। भगवान् के शुद्ध भक्त के रूप में महाराज परीक्षित भगवान् द्वारा अपने भक्तों की भावनाओं के दिव्य आदान-प्रदान का महत्त्व समझ सकते थे और इस तरह वे स्वयं भगवान् के आचरण से अभिभूत थे। मात्र अपने शुद्ध भक्तों के साथ भगवान् के आचरण के महत्त्व को समझ लेने से ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि भक्तों के साथ भगवान् के आचरण सामान्य मानवीय आचरण जैसे प्रतीत होते हैं, लेकिन जो उन्हें यथार्थ रूप में समझता है, वह तुरन्त ही भगवद्धाम जाने के लिए सुपात्र बन जाता है। पाण्डवजन भगवान् की इच्छा के प्रति इतने विनीत थे कि वे भगवान् की सेवा में कितनी ही शक्ति लगा सकते थे और ऐसे अनन्य संकल्प से वे इच्छित रूप में भगवान् की कृपा के भाजन बन सके थे।

तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ।

नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत् तन्निबोध मे ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तस्य—महाराज परीक्षित का; एवम्—इस प्रकार; वर्तमानस्य—ऐसे विचारों में लीन रहकर; पूर्वेषाम्—अपने पूर्वजों में; वृत्तिम्—अच्छा कार्य; अन्वहम्—दिन-प्रतिदिन; न—नहीं; अति-दूरे—काफी दूर; किल—निश्चय ही; आश्चर्यम्—आश्चर्यजनक; यत्—वह; आसीत्—था; तत्—जो; निबोध—उसे जानो; मे—मुझसे।

अब तुम लोग मुझसे वह घटना सुन सकते हो, जो तब घटी, जब महाराज परीक्षित अपने पूर्वजों की उत्तम वृत्तियों के विषय में सुनते हुए तथा उन विचारों में डूबे हुए अपने दिन बिता रहे थे।

धर्मः पदैकेन चरन् विच्छायामुपलभ्य गाम् ।
पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

धर्मः—साक्षात् धर्म; पदा—पाँव से; एकेन—एक ही; चरन्—विचरण करते; विच्छायाम्—शोक की छाया से ग्रसित; उपलभ्य—मिलकर; गाम्—गाय को; पृच्छति—पूछते हुए; स्म—सहित; अश्रु-वदनाम्—मुख-मंडल में अश्रुओं सहित; विवत्साम्—बिना बछड़े की; इव—सदृश; मातरम्—माता को।

साक्षात् धर्म, बैल के रूप में विचरण कर रहा था। उसे गाय के रूप में साक्षात् पृथ्वी मिली, जो ऐसी माता के समान शोकग्रस्त दिखाई पड़ी, जो अपना पुत्र खो चुकी हो। उसकी आँखों में आँसू थे और उसके शरीर का सौन्दर्य उड़ गया था। धर्म ने पृथ्वी से इस प्रकार प्रश्न किया।

तात्पर्य : बैल नैतिक सिद्धान्त का प्रतीक है और गाय पृथ्वी की प्रतिनिधि है। जब बैल तथा गाय प्रसन्न मुद्रा में रहते हैं, तो यह माना जाता है कि संसार भर के लोग भी प्रसन्न हैं। इसका कारण यह है कि बैल खेतों से अन्न उपजाने में सहायता करता है और गाय दूध देती है, जो समग्र भोज्य आहारों में चमत्कारिक पदार्थ है। अतः मानव समाज इन दो महत्त्वपूर्ण पशुओं का बड़ी ही सावधानी से पालन करता है, जिससे वे प्रसन्नतापूर्वक सर्वत्र विचरण कर सकें। लेकिन आज के समय में इस कलियुग में बैल तथा गाय दोनों का वध हो रहा है और दोनों ही उन लोगों द्वारा भोजन के रूप में उपयोग में लाये जा रहे हैं, जो ब्राह्मण संस्कृति को नहीं जानते। समस्त मानव समाज के कल्याण हेतु ब्राह्मण सभ्यता को समस्त सांस्कृतिक मामलों में सर्वोपरि सिद्धि मानकर बैल तथा गाय को बचाया जा सकता है। ऐसी संस्कृति की समृद्धि से समाज का मनोबल समुचित रूप से बना रहता है और इस तरह बिना किसी बाहरी प्रयास के ही शान्ति तथा सम्पन्नता प्राप्त हो जाती है। जब ब्राह्मण संस्कृति का पतन होता है, तो गाय-बैल के साथ दुर्व्यवहार होता है और जो परिणाम निकलता है उसके निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हैं।

धर्म उवाच

कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते
विच्छायासि म्लायतेषन्मुखेन ।
आलक्षये भवतीमन्तराधिं
दूरे बन्धुं शोचसि कञ्चनाम्ब ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

धर्मः उवाच—धर्म ने पूछा; कच्चित्—क्या; भद्रे—महोदया; अनामयम्—स्वस्थ एवं प्रसन्न; आत्मनः—स्वयं; ते—आपको; विच्छाया असि—शोक की छाया से आवृत प्रतीत होते हैं; म्लायता—श्याम रंग की; ईषत्—कुछ-कुछ; मुखेन—मुख मंडल से; आलक्षये—आप दिखती हो; भवतीम्—आप; अन्तराधिम्—आन्तरिक व्याधि; दूरे—दूर स्थित; बन्धुम्—मित्र के विषय में; शोचसि—चिन्ता कर रहे हैं; कञ्चन—कोई; अम्ब—हे माता ।

धर्म ने (बैल रूप में) पूछा : हे महोदया, आप स्वयं स्वस्थ तथा प्रसन्न तो हैं? आप शोक की छाया से आवृत क्यों हैं? आपके मुख से ऐसा लगता है कि आप म्लान पड़ गई हैं। क्या आपको कोई भीतरी रोग हो गया है या आप अपने किसी दूर स्थित सम्बन्धी के विषय में सोच रही हैं?

तात्पर्य : इस कलियुग में विश्व भर के लोग सदैव चिन्ताग्रस्त रहते हैं। हर एक किसी न किसी रोग से ग्रस्त है। इस युग के लोगों के चेहरों से ही उनके मनों की बात पढ़ी जा सकती है। हर व्यक्ति, घर से दूर स्थित अपने सम्बन्धी की अनुपस्थिति का अनुभव करता है। कलियुग का विशेष लक्षण यह है कि कोई भी परिवार अब एकसाथ रहने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर पाता। जीविकोपार्जन के लिए पिता अपने पुत्र से, अथवा पत्नी अपने पति से दूर रहती है। आन्तरिक रोग, प्रियजनों से विछोह तथा पूर्ववत् स्थिति बनाये रखने की चिन्ता सबों को सताती है। ये कतिपय कारण हैं जिनसे इस युग के लोग सदैव दुखी रहते हैं।

पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपाद-
मात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ।
आहो सुरादीन् हृतयज्ञभागान्
प्रजा उत स्विन्मघवत्यवर्षति ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पादैः—तीन पाँवों से; न्यूनम्—विहीन; शोचसि—क्या आप शोक कर रही हो; मा—मेरा; एक-पादम्—केवल एक पाँव; आत्मानम्—अपना शरीर; वा—अथवा; वृषलैः—अवैध मांस-भक्षकों के द्वारा; भोक्ष्यमाणम्—शोषित किये जाने के लिए; आहोः—यज्ञ में; सुर-आदीन्—देवता-गण; हत-यज्ञ—यज्ञ से रहित; भागान्—हिस्से; प्रजाः—जीव; उत—बढ़ता हुआ; स्वित्—कहीं; मघवति—दुर्भिक्ष में; अवर्षति—वर्षा न होने से।

मेरे तीन पाँव नहीं रहे और अब मैं केवल एक पाँव पर खड़ा हूँ। क्या आप मेरी इस दशा पर शोक कर रही हैं या इस बात पर कि अब आगे अवैध मांस-भक्षक आपका शोषण करेंगे? या आप इसलिए दुखी हैं कि अब देवताओं को यज्ञ की बलि में से अपना हिस्सा नहीं मिल रहा, क्योंकि इस समय कोई यज्ञ सम्पन्न नहीं हो रहे? या आप दुर्भिक्ष तथा सूखे के कारण दुखी जीवों के लिए दुखित हो रही हैं?

तात्पर्य : ज्यों-ज्यों कलियुग आगे बढ़ेगा, त्यों-त्यों चार बातों का विशेष रूप से क्षरण होता जायेगा। ये हैं—आयु, दया, स्मरण-शक्ति तथा नैतिक और धार्मिक सिद्धान्त। चूँकि धर्म के चार भागों में से तीन भाग का लोप हो जायेगा, अतएव प्रतीक-स्वरूप बैल केवल एक पैर पर खड़ा था। जब सारे संसार की तीन चौथाई जनता धर्म-हीन हो जाती है, तो पशुओं के लिए नरक-जैसी-स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कलियुग में ईश्वर-विहीन सभ्यताएँ अनेक तथाकथित समितियों को जन्म देंगी, जिनमें ईश्वर की प्रत्यक्ष या परोक्ष निन्दा की जाएगी। और इस प्रकार नास्तिक समितियाँ दुनिया को ऐसा बना देगी, जिससे दुनिया अच्छे लोगों के लिए बसने योग्य नहीं रहेगी। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति श्रद्धा के अनुपात के अनुसार मनुष्य की कोटियाँ होती हैं। सर्वश्रेष्ठ श्रद्धालु व्यक्ति वैष्णव तथा ब्राह्मण हैं, तब क्षत्रिय, फिर वैश्य, तब शूद्र, फिर म्लेच्छ, यवन और अन्त में चण्डाल आते हैं। मानवीय भाव का पतन म्लेच्छों से प्रारम्भ हो जाता है और मनुष्य जाति के पतन में चण्डाल तो अवनति की अन्तिम अवस्था है। वैदिक साहित्य में उल्लिखित ये सारे शब्द किसी जाति-विशेष या जन्म के लिए प्रयुक्त नहीं हैं। ये सामान्य रूप से मनुष्यों के विभिन्न गुण हैं। जन्म-अधिकार या जाति का कोई प्रश्न नहीं है। कोई भी व्यक्ति अपने निजी प्रयासों से इन गुणों को अर्जित कर सकता है और इस तरह वैष्णव का पुत्र म्लेच्छ बन सकता है या चण्डाल का पुत्र ब्राह्मण से भी बढ़कर हो सकता है। यह सब उनके सत्संग तथा भगवान् के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध के सापेक्ष होता है।

सामान्यतया मांस खानेवालों को म्लेच्छ कहा जाता है। किन्तु सारे मांस-भक्षक म्लेच्छ नहीं होते। जो लोग शास्त्रीय आदेशानुसार मांस ग्रहण करते हैं, वे म्लेच्छ नहीं हैं, किन्तु जो बिना रोक-टोक के मांस-भक्षण करते हैं, वे म्लेच्छ हैं। शास्त्रों में गो-मांस वर्जित है और वेदों के अनुयायी बैलों तथा गायों को विशेष संरक्षण प्रदान करते हैं। लेकिन इस कलियुग में लोग गाय तथा बैल के शरीर का इच्छानुसार शोषण करेंगे और इस तरह वे नाना प्रकार के कष्टों को बुलावा देते रहेंगे।

इस युग के लोग कोई यज्ञ नहीं करेंगे। म्लेच्छ लोग ऐसे यज्ञों की तनिक भी परवाह नहीं करेंगे, यद्यपि भौतिक इन्द्रिय-भोग में व्यस्त रहनेवालों के लिए यज्ञ करना अनिवार्य है। *भगवद्गीता* (३.१४-१६) में यज्ञों को सम्पन्न करने की जोरदार संस्तुति की गई है।

सारे जीव स्रष्टा ब्रह्मा द्वारा सृजित हैं और उत्पन्न किये गये जीवों को निरन्तर भगवद्धाम की ओर अग्रसर होने के लिए उन्होंने ही यज्ञ सम्पन्न करने की प्रणाली स्थापित की है। पद्धति यह है कि सभी जीव अन्न तथा शाक की उपज पर जाते हैं और ऐसे खाद्यपदार्थ खाकर वे रक्त तथा वीर्य के रूप में शरीर की जीवनी शक्ति को प्राप्त करते हैं, और रक्त तथा वीर्य से ही एक जीव दूसरे जीवों को उत्पन्न करने के लिए समर्थ बनता है। किन्तु अन्न, घास इत्यादि तभी उत्पन्न होते हैं, जब वर्षा होती है और बताये गये यज्ञों को सम्पन्न करने से ही वर्षा समुचित रूप से बरसती है। 'साम', 'यजुर्', 'ऋग्' तथा 'अथर्व' वेदों के अनुष्ठानों द्वारा ऐसे यज्ञों का निर्देशन होता है। *मनु-स्मृति* में कहा गया है कि अग्नि की वेदी पर यज्ञ करने से सूर्यदेव प्रसन्न होते हैं। जब सूर्यदेव प्रसन्न होते हैं, तब वे समुद्र से उचित रीति से जल एकत्र करते हैं और इस तरह आकाश में प्रचुर बादल जुटते हैं और तब वर्षा होती है। पर्याप्त वर्षा होने पर मनुष्यों तथा पशुओं के लिए प्रचुर अन्न उत्पन्न होता है और इस तरह जीवों में आगे उन्नति करने के लिए शक्ति प्राप्त होती है। लेकिन म्लेच्छ-गण अन्य पशुओं के साथ-साथ बैलों तथा गायों को मारने के लिए कसाईघर स्थापित करते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि फैक्टरियों की संख्या बढ़ाकर वे उन्नति करेंगे और यज्ञों को सम्पन्न किये बिना तथा अन्न उपजाये बिना भी, वे पशु-मांस पर रह लेंगे। लेकिन उन्हें यह जान लेना चाहिए कि पशुओं के लिए भी उन्हें घास तथा वनस्पति उत्पन्न करनी होगी। अन्यथा पशु जीवित नहीं रह सकते। और पशुओं के लिए घास उत्पन्न करने के लिए उन्हें पर्याप्त वर्षा

की आवश्यकता होगी। अतएव अन्ततः उन्हें सूर्यदेव, इन्द्र, चन्द्र जैसे देवों की कृपा पर आश्रित रहना होगा और ऐसे देवताओं को यज्ञ सम्पन्न करके ही प्रसन्न किया जा सकता है।

यह भौतिक जगत एक बन्दीगृह के समान है, जैसाकि हम कई बार बता चुके हैं। देवता भगवान् के सेवक हैं, जो बन्दीगृह के रख-रखाव को देखते हैं। ये देवता चाहते हैं कि जो विद्रोही जीव श्रद्धा-विहीन होकर जीवित रहना चाहते हैं, वे धीरे-धीरे भगवान् की परम शक्ति की ओर मुड़ें। अतएव शास्त्रों में यज्ञ सम्पन्न करने की संस्तुति की गयी है।

भौतिकतावादी मनुष्य कठिन श्रम करके इन्द्रिय-भोग के लिए कर्म-फलों को भोगना चाहते हैं। अतः वे जीवन में पग-पग पर कई प्रकार के पाप करते हैं। किन्तु जो लोग सचेतन रहकर भगवान् की भक्तिमय सेवा में लगे रहते हैं, वे सभी प्रकार के पाप तथा पुण्यों से परे रहते हैं। उनके कार्य-कलाप प्रकृति के तीनों गुणों के कल्मष से मुक्त होते हैं। भक्तों को संस्तुत यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि भक्त का सारा जीवन ही यज्ञ का प्रतीक है। किन्तु जो लोग इन्द्रियभोग के लिए सकाम कर्म में लगे रहते हैं, उन्हें संस्तुत यज्ञ करने चाहिए, क्योंकि सकाम-कर्मियों द्वारा किये गये समस्त पाप-कर्मों से मुक्त होने का यही एकमात्र साधन है। यज्ञ ही ऐसे संचित पापों के शमन का साधन है। देवतागण ऐसे यज्ञों के करने से उसी तरह प्रसन्न होते हैं, जिस प्रकार जेल के बन्दियों के आज्ञाकारी बन जाने पर बन्दीगृह के अधिकारी प्रसन्न होते हैं। किन्तु भगवान् चैतन्य ने केवल एक यज्ञ जिसे *सङ्कीर्तन-यज्ञ* कहते हैं, करने के लिए संस्तुति की है, और उसमें प्रत्येक व्यक्ति भाग ले सकता है। इस तरह संकीर्तन यज्ञ अर्थात् हरे कृष्ण का कीर्तन से भक्त तथा सकाम कर्मी दोनों ही समान रूप से लाभ उठा हो सकते हैं।

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान्
 शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ।
 वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्म-
 ण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अरक्ष्यमाणाः—अरक्षित; स्त्रियः—स्त्रियाँ; उर्वि—पृथ्वी पर; बालान्—बच्चों को; शोचसि—आपको तरस आ रही है; अथो—इस तरह; पुरुष-आदैः—आदमियों के द्वारा; इव—सदृश; आतान्—दुखियारी; वाचम्—वाणी; देवीम्—देवी को; ब्रह्म-कुले—ब्राह्मण-कुल में; कुकर्मणि—धर्म के विरुद्ध कार्य करता है; अब्रह्मण्ये—ब्राह्मण-संस्कृति के विरोधी लोग; राज-कुले—प्रशासनिक वंश में; कुल-अछयान्—अधिकांश कुल (ब्राह्मण)।

क्या आप को उन दुखियारी स्त्रियों तथा बच्चों पर दया आ रही है, जिन्हें चरित्रहीन पुरुषों द्वारा अकेले छोड़ दी गई हैं? अथवा आप इसलिए दुखी हैं कि ज्ञान की देवी अधर्म में रत ब्राह्मणों के हाथ में हैं? या यह आप देख कर दुखी हैं कि ब्राह्मणों ने उन राजकुलों का आश्रय ग्रहण कर लिया है, जो ब्राह्मण संस्कृति का आदर नहीं करते?

तात्पर्य : कलियुग में ब्राह्मण तथा गायों के साथ स्त्रियाँ तथा बच्चे अत्यन्त उपेक्षित रहेंगे और अरक्षित छोड़ दिये जायेंगे। इस युग में स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध के कारण अनेक स्त्रियाँ तथा बच्चे अरक्षित हो जायेंगे। परिस्थितियों के चलते स्त्रियाँ, पुरुषों के संरक्षण से स्वतंत्र होना चाहेंगी और विवाह, पुरुष तथा स्त्री के मध्य औपचारिक समझौता मात्र बन कर रह जायेगा। अधिकतर बच्चों की ठीक से देख-रेख नहीं हो सकेगी। ब्राह्मण परम्परागत बुद्धिमान व्यक्ति होते हैं, अतएव वे आधुनिक शिक्षा के शीर्ष तक पहुँच सकेंगे, किन्तु जहाँ तक चारित्रिक तथा धार्मिक नियमों का सम्बन्ध है, वे अत्यन्त गिरे हुए होंगे। शिक्षा तथा दुष्चरित्रता का कभी साथ नहीं होता, किन्तु ये दोनों साथ-साथ चलेंगे। प्रशासन के शीर्षस्थ लोग वैदिक वाङ्मय की नीतियों की भर्त्सना करेंगे और तथाकथित धर्म-निरपेक्ष राज्य का संचालन करेंगे और तथाकथित शिक्षित ब्राह्मण ऐसे चरित्रहीन लोगों द्वारा खरीद लिए जायेंगे। यहाँ तक कि दर्शनवेत्ता तथा धर्म पर अनेक पुस्तकें लिखनेवाला भी सरकार से उच्च पद स्वीकार करेगा जिसमें शास्त्रों की आचार-संहिता का तिरस्कार होता है। ब्राह्मणों को ऐसी नौकरी स्वीकार करने पर विशेष रूप से प्रतिबन्ध है। लेकिन इस युग में वे न केवल चाकरी स्वीकार करेंगे, अपितु यदि वह अति अधम प्रकार की नौकरी होगी, फिर भी वे ऐसा करेंगे। ये कलियुग के कुछ लक्षण हैं, जो मानव समाज के सामान्य कल्याण के लिए हानिकारक हैं।

किं क्षत्रबन्धून् कलिनोपसृष्टान्
राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ।

इतस्ततो वाशनपानवासः

स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; क्षत्र-बन्धून्—अयोग्य प्रशासक; कलिना—कलियुग के प्रभाव से; उपसृष्टान्—मोह-ग्रस्त; राष्ट्रणि—राज्य के मामले; वा—अथवा; तैः—उनके द्वारा; अवरोपितानि—अव्यवस्थित किया गया; इतः—इधर; ततः—उधर; वा—अथवा; अशन—भोजन ग्रहण करते हुए; पान—पेय; वासः—आवास; स्नान—स्नान; व्यवाय—संभोग; उन्मुख—प्रवृत्त; जीव-लोकम्—मानव-समाज।

अब तथाकथित प्रशासक इस कलियुग के प्रभाव से मोहग्रस्त हो गये हैं और इस तरह उन्होंने राज्य के सारे मामलों को अस्त-व्यस्त कर रखा है। क्या आप इस कुव्यवस्था के लिए शोक कर रही हैं? अब सामान्य जनता खाने, पीने, सोने तथा सहवास के विधि-विधानों का पालन नहीं कर रही है और वह सारे कार्य कहीं भी और कैसे भी करने के लिए सन्नद्ध रहती है। क्या आप इस कारण से अप्रसन्न हैं?

तात्पर्य : जीवन की कुछ आवश्यकताएँ ऐसी हैं, जो पशुओं के समान ही हैं—यथा खाना, सोना, डरना तथा सहवास करना। ये शारीरिक आवश्यकताएँ मनुष्य तथा पशु दोनों के लिए हैं। लेकिन मनुष्य को इन इच्छाओं की पूर्ति पशुओं की तरह नहीं, अपितु मानव की भाँति करनी होती है। एक कुत्ता लोगों के समक्ष, बिना हिचक के, कुतिया के साथ संभोग कर सकता है, किन्तु यदि मनुष्य ऐसा करे तो इसे सामान्य रूप से अनाचार कहा जायेगा और उस व्यक्ति को अपराधी की भाँति दण्डित किया जायेगा। अतएव मनुष्य के लिए कुछ विधि-विधान हैं, जो सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी हैं। जब मानव-समाज कलियुग के प्रभाव से मोहग्रस्त हो जाता है, तो ऐसे विधि-विधानों की अनदेखी करता है। लोग इस युग में जीवन की ऐसी आवश्यकताओं में विधि-विधानों का पालन किये बिना लिप्त रहते हैं और सामाजिक तथा चारित्रिक नियमों में ऐसी गिरावट निश्चय ही शोचनीय है, क्योंकि ऐसे पाशविक आचरण के प्रभाव अत्यन्त हानिकारक होते हैं। इस युग में पिता तथा अभिभावक अपने-अपने रक्षितों के आचरण से प्रसन्न नहीं हैं। उन्हें जानना चाहिए कि कितने ही निर्दोष बालक, इस कलि के दुष्प्रभाव में आकर बुरी संगति के शिकार होते हैं। हमें श्रीमद्भागवत से पता चलता है कि अबोध ब्राह्मण-पुत्र, अजामिल, एक बार सड़क पर चल रहा था, तो उसने एक शूद्र दम्पति को कामपीडित होकर एक दूसरे को आलिंगन करते देखा। इससे बालक आकृष्ट हो गया और

बाद में वह तमाम व्यसनों का शिकार बन गया। वह शुद्ध ब्राह्मण के पद से गिरकर एक अधम आवारा लुच्चा बन गया और यह सब कुसंगति के कारण हुआ। उस समय अजामिल जैसा एक भुक्तभोगी था, किन्तु इस कलियुग में बेचारे अबोध विद्यार्थी नित्य सिनेमा के शिकार होते हैं, जिससे पुरुष केवल कामवासना की ओर प्रेरित होते हैं। तथाकथित प्रशासक सबके-सब *क्षत्रिय-कर्म* में प्रशिक्षित नहीं हैं। जिस तरह ब्राह्मण ज्ञान तथा मार्ग-दर्शन के लिए होते हैं, उसी तरह क्षत्रिय प्रशासन के लिए होते हैं। *क्षत्र-बन्धु* शब्द उन तथाकथित प्रशासकों या व्यक्तियों का सूचक है, जो संस्कृति तथा परम्परा-विषयक उचित प्रशिक्षण पाये बिना प्रशासक के पद पर बिठा दिये गये हैं। आजकल वे इन उच्च पदों पर उस जनता के मतों द्वारा पहुँच जाते हैं, जिसका स्वयं जीवन के विधि-विधानों में अधोपतन हुआ होता है। जिन लोगों का जीवन-स्तर इतना निम्न हो, वे भला किस तरह उचित व्यक्ति का चुनाव कर सकते हैं? अतएव, कलियुग के प्रभाव से सर्वत्र हर वस्तु—राजनीतिक, सामाजिक, अथवा धार्मिक—उलट-पुलट है, अतएव बुद्धिमान मनुष्य के लिए यह चिन्ता की बात है।

यद्वाम्ब ते भूरिभरावतार
कृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ।
अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा
कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यद्वा—हो सकता है; अम्ब—हे माता; ते—आपका; भूरि—भारी; भर—बोझा; अवतार—बोझा घटाना; कृत—किया गया; अवतारस्य—अवतारी; हरेः—भगवान् श्रीकृष्ण का; धरित्रि—हे पृथ्वी; अन्तर्हितस्य—दृष्टि से ओझल भगवान् का; स्मरती—सोचते हुए; विसृष्टा—किया गया सब कुछ; कर्माणि—कर्म; निर्वाण—मोक्ष; विलम्बितानि—जो निहित हो।

हे माता पृथ्वी, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हरि ने तुम्हारे भारी बोझ को उतारने के लिए ही श्रीकृष्ण के रूप में स्वयं अवतार लिया। यहाँ के उनके सारे कार्य दिव्य हैं और वे मोक्ष-पथ को पक्का करनेवाले हैं। अब आप उनकी उपस्थिति से विहीन हो गई हैं। शायद अब आप उन्हीं कार्यों को सोच रही हैं और उनकी अनुपस्थिति में दुखी हो रही हैं।

तात्पर्य : भगवान् के कार्यों में मोक्ष सम्मिलित है, किन्तु वे किसी निर्वाण या मोक्ष से प्राप्त होनेवाले आनन्द से अधिक आनन्ददायी हैं। श्रील जीव गोस्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के

मतानुसार, यहाँ पर प्रयुक्त शब्द *निर्वाण-विलम्बितानि* का अर्थ है, “मोक्ष के महत्त्व को कम करनेवाला” निर्वाण अर्थात् मुक्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कठोर तपस्या करनी होती है, लेकिन भगवान् इतने दयालु हैं कि वे पृथ्वी का भार कम करने के लिए अवतरित होते हैं। मनुष्य ऐसे कार्यों को केवल स्मरण करके निर्वाण से प्राप्त होनेवाले सुख को लात मार कर, भगवान् का सात्रिध्य पाने और वहाँ उनकी आनन्दमयी सेवा में लगे रहने के लिए उनके दिव्य धाम में पहुँच सकता है।

इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं
वसुन्धरे येन विकर्षितासि ।
कालेन वा ते बलिनां बलीयसा
सुरार्चितं किं हतमम्ब सौभगम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

इदम्—यह; मम—मुझको; आचक्ष्व—कृपया बताओ; तव—तुम्हारे; आधिमूलम्—आपके दुखों की जड़; वसुन्धरे—हे समस्त धन की खान; येन—जिससे; विकर्षितासि—इतनी दुर्बल हो; कालेन—समय के प्रभाव से; वा—अथवा; ते—आपका; बलिनाम्—अत्यन्त शक्तिशाली से; बलीयसा—अधिक शक्तिशाली; सुर-अर्चितम्—देवताओं द्वारा वन्दनीय; किम्—क्या; हतम्—छीन लिया; अम्ब—माता; सौभगम्—सौभाग्य ।

हे माता, आप सारे धन की खान हैं। कृपया मुझे अपने उन कष्टों का मूल कारण बतायें, जिससे आप इस दुर्बल अवस्था को प्राप्त हुई हैं। मैं सोचता हूँ कि अत्यन्त बलवानों को भी जीतनेवाले प्रबल काल ने देवताओं द्वारा वन्दनीय आपके सारे सौभाग्य को छीन लिया है।

तात्पर्य : भगवान् की कृपा से प्रत्येक ग्रह पूर्णतः सुसज्जित रूप में सृजित होता है। अतएव यह पृथ्वी अपने निवासियों के पालन हेतु आवश्यक सम्पत्ति से पूर्ण रूप से सुसज्जित है और इतना ही नहीं, अपितु जब भगवान् इस धरा पर अवतरित होते हैं, तब सारी पृथ्वी सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से इतनी समृद्ध हो जाती है कि स्वर्ग के निवासी भी बड़े प्यार से इसकी पूजा करते हैं। लेकिन भगवान् की इच्छा से सारी पृथ्वी तुरन्त बदल सकती है। वे अपनी मृदुल इच्छानुसार इसे बना-बिगाड़ सकते हैं। अतएव किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि वह आत्म-निर्भर है या भगवान् से स्वतंत्र है।

धरण्युवाच

भवान् हि वेद तत्सर्वं

यन्मां धर्मानुपृच्छसि ।

चतुर्भिर्वर्तसे येन

पादैर्लोकसुखावहैः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

धरणी उवाच—माता पृथ्वी ने उत्तर दिया; भवान्—आप; हि—निश्चय ही; वेद—जानते हैं; तत् सर्वम्—वह सब, जिसे आप मुझसे पूछा है; यत्—जो; माम्—मुझसे; धर्म—हे धर्म—रूप पुरुष; अनुपृच्छसि—आप एक-एक करके पूछा; चतुर्भिः—चारों; वर्तसे—आप उपस्थित हो; येन—जिससे; पादैः—पाँवों से; लोक—प्रत्येक लोक में; सुख-आवहैः—सुख को बढ़ानेवाला ।

(गाय के रूप में) पृथ्वी देवी ने (बैल-रूप में) धर्म-रूप पुरुष को इस प्रकार उत्तर दिया :

हे धर्म, आपने मुझसे जो भी पूछा है, वह आपको ज्ञात हो जायेगा। मैं आपके उन सारे प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करूँगी। कभी आप भी अपने चार पाँवों द्वारा पालित थे और आपने भगवान् की कृपा से सारे विश्व में सुख की वृद्धि की थी।

तात्पर्य : धर्म के नियमों की स्थापना भगवान् स्वयं करते हैं और ऐसे नियमों को कार्यान्वित करनेवाले हैं धर्मराज या यमराज। ऐसे नियम सत्ययुग में पूरी तरह काम करते हैं, त्रेतायुग में इनमें एक चौथाई कमी आ जाती है, द्वापरयुग में आधी कमी आती है और कलियुग में ये एक चौथाई रह जाते हैं और धीरे-धीरे घट कर शून्य पर आ जाते हैं; तब प्रलय हो जाती है। विश्व में सुख धार्मिक नियमों के पालन के अनुपात में मिलता है, चाहे वह व्यक्तिगत रूप से हो या सामूहिक रूप से। सर्वश्रेष्ठ शौर्य यही होगा कि सभी प्रकार की विषमताओं के होते हुए भी, धर्म को धारण किया जाय। इस तरह मनुष्य अपने जीवनकाल में सुखी हो सकता है और अन्ततः भगवद्धाम को लौट सकता है।

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवम् ।

शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥ २६ ॥

ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः ।

स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥ २७ ॥

प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ।

गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहङ्कृतिः ॥ २८ ॥

एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ।

प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥ २९ ॥

तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतम् ।

शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

सत्यम्—सच्चाई; शौचम्—स्वच्छता; दया—दूसरे के दुखों को न सह पाना; क्षान्तिः—क्रोध का कारण होते हुए भी आत्मसंयम; त्यागः—वैराग्य; सन्तोषः—आत्म-तुष्टि; आर्जवम्—स्पष्टता; शमः—मन की स्थिरता; दमः—इन्द्रियों का संयम; तपः—अपने उत्तरदायित्व के प्रति सच्चाई; साम्यम्—मित्र तथा शत्रु के बीच भेदभाव न करना; तितिक्षा—अन्यों के अपराधों के प्रति सहनशीलता; उपरतिः—लाभ-हानि के प्रति उदासीनता; श्रुतम्—शास्त्रों के आदेशों का पालन; ज्ञानम्—ज्ञान (आत्म-साक्षात्कार); विरक्तिः—इन्द्रियभोग से अनासक्ति; ऐश्वर्यम्—नायकत्व; शौर्यम्—बहादुरी; तेजः—प्रभाव, प्रताप; बलम्—असम्भव को सम्भव बनाना; स्मृतिः—समुचित कर्तव्य की खोज; स्वातन्त्र्यम्—अन्यों पर आश्रित न रहना; कौशलम्—सारी कार्यकुशलता; कान्तिः—सौन्दर्य; धैर्यम्—उपद्रव से मुक्ति; मार्दवम्—दयालुता; एव—इस प्रकार; च—भी; प्रागल्भ्यम्—उदारता; प्रश्रयः—विनय; शीलम्—शील; सहः—संकल्प; ओजः—पूर्ण ज्ञान; बलम्—उपयुक्त दक्षता; भगः—भोग का विषय; गाम्भीर्यम्—प्रसन्नता; स्थैर्यम्—स्थिरता; आस्तिक्यम्—आज्ञाकारिता; कीर्तिः—यश; मानः—पूजित होने के योग्य; अनहङ्कृतिः—निरभिमानता; एते—ये सब; च अन्ये—तथा अन्य अनेक; च—तथा; भगवान्—भगवान्; नित्याः—शाश्वत; यत्र—जहाँ; महा-गुणाः—बड़े-बड़े गुण; प्राथ्याः—रखने के योग्य; महत्त्वम्—महानता; इच्छद्भिः—इच्छा करनेवाले; न—कभी नहीं; वियन्ति—घटते हैं; स्म—सदैव; कर्हिचित्—किसी समय; तेन—उनके द्वारा; अहम्—मैं; गुण-पात्रेण—समस्त गुणों का आगार; श्री—भाग्य की देवी; निवासेन—रहने के स्थान द्वारा; साम्प्रतम्—हाल ही में; शोचामि—सोच रही हूँ; रहितम्—विहीन; लोकम्—ग्रह; पाप्मना—समस्त पापों के संग्रह से; कलिना—कलि द्वारा; ईक्षितम्—देखा जाता है।

उनमें निम्नलिखित गुण तथा अन्य अनेक दिव्य गुण पाये जाते हैं, जो शाश्वत रूप से विद्यमान रहते हैं और उनसे कभी विलग नहीं होते। ये हैं (१) सच्चाई (२) स्वच्छता (३) दूसरे के दुखों को सह न पाना, (४) क्रोध को नियंत्रित करने की शक्ति, (५) आत्मतुष्टि, (६) निष्कपटता, (७) मन की स्थिरता, (८) इन्द्रियों का संयम, (९) उत्तरदायित्व, (१०) समता, (११) सहनशीलता, (१२) समदर्शिता, (१३) आज्ञाकारिता, (१४) ज्ञान, (१५) इन्द्रिय भोग से अनासक्ति, (१६) नायकत्व, (१७) बहादुरी, (१८) प्रभाव, (१९) असम्भव को सम्भव बनाना, (२०) कर्तव्य पालन, (२१) पूर्ण स्वतंत्रता, (२२) कार्य कुशलता, (२३) सौन्दर्यमयता, (२४) धैर्य, (२५) दयालुता, (२६) उदारता, (२७) विनय, (२८) शील, (२९) संकल्प, (३०) ज्ञान की पूर्णता, (३१) उपयुक्त दक्षता, (३२) समस्त भोग विषयों का स्वामित्व, (३३) प्रसन्नता, (३४) स्थिरता, (३५) आज्ञाकारिता, (३६) यश, (३७) पूजा, (३८) निरभिमानता, (३९) अस्तित्व (भगवान् के रूप में), (४०) शाश्वतता। समस्त सत्त्व तथा सौन्दर्य के आगार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ने इस धरा पर अपनी दिव्य लीलाएँ बन्द कर दी हैं। उनकी अनुपस्थिति में कलि ने सर्वत्र अपना प्रभाव फैला लिया है। अतएव मैं संसार की यह दशा देखकर अत्यन्त दुखी हूँ।

तात्पर्य : भले ही पृथ्वी को चूर्ण-चूर्ण करके इसके परमाणुओं को गिन लिया जाय, तो भी भगवान् के दिव्य गुणों का अनुमान लगाना दुष्कर होगा। कहा जाता है कि भगवान् अनन्तदेव ने अपनी अनन्त जिह्वाओं से परमेश्वर के दिव्य गुणों का गान करना चाहा, किन्तु भगवान् के गुणों का अनुमान लगा पाना अनन्त वर्षों तक सम्भव न हो पाया। भगवान् के गुणों के विषय में उपर्युक्त कथन उतनी ही दूर तक सही है जहाँ तक मनुष्य उन गुणों को देख पाता है। किन्तु यदि इतने ही गुण मान लिए जाँय, तो भी वे कई उपशीर्षकों में विभाजित किये जा सकते हैं। श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार, तीसरे गुण, अर्थात् दूसरे के दुखों को न सह पाना, के दो उपविभाग हो सकते हैं—(१) शरणागत जीवों की रक्षा तथा (२) भक्तों के लिए शुभकामनाएँ। *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि वे चाहते हैं कि प्रत्येक जीव उन्हीं की शरण में आये और वे आश्वस्त करते हैं कि जो लोग ऐसा करेंगे, उनकी वे सारे पापों से रक्षा करेंगे। जो शरणागत नहीं हैं, वे भगवान् के भक्त नहीं हैं और इस प्रकार हर एक को विशेष संरक्षण प्रदान नहीं किया जाता है। किन्तु भक्तों के साथ उनकी समस्त शुभकामनाएँ रहती हैं और जो लोग वास्तव में उनकी दिव्य प्रेमामयी सेवा में लगे रहते हैं, भगवान् उन पर विशेष ध्यान देते हैं। वे ऐसे शुद्ध भक्तों का मार्गदर्शन करते हैं, जिससे वे अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए भगवद्धाम लौटने में समर्थ हो सकें। समता (१०) से, भगवान् हर एक पर समान रूप से दयालु हैं, जिस तरह से सूर्य हर एक को समान रूप से अपनी किरणें वितरित करता है। फिर भी ऐसे अनेक लोग होते हैं, जो सूर्य की किरणों का लाभ नहीं उठा पाते। इसी प्रकार, भगवान् कहते हैं कि उनके शरणागत होना एक प्रकार से सुरक्षा की गारन्टी है, किन्तु जो अभागे हैं, वे इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर पाते और इस प्रकार भौतिक कष्टों को भोगते रहते हैं। इस तरह यद्यपि भगवान् सबों के समान रूप से शुभचिन्तक हैं, तो भी अभागे जीव कुसंगति के कारण ही उनके उपदेशों को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाते। इसके लिए भगवान् को कभी भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वे केवल भक्तों के शुभचिन्तक कहलाते हैं। वे अपने भक्तों के पक्षपाती प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि यह जीव पर निर्भर करता है कि वह भगवान् के समान व्यवहार को स्वीकार करे या ठुकरा दे।

भगवान् कभी अपने वचनों से मुकरते नहीं। जब वे सुरक्षा का आश्वासन दे देते हैं, तो चाहे जो भी हो, वे अपने वचनों को पूरा करते हैं। यह शुद्ध भक्त का कर्तव्य है कि भगवान् ने, या भगवान् के

प्रामाणिक प्रतिनिधि ने अर्थात् गुरु ने, उस पर जो भार सौंपा है, वह उसे पूरा करने के लिए दृढ़ रहे। शेष तो भगवान् अबाध रूप से पूरा करेंगे।

भगवान् का उत्तरदायित्व भी अद्वितीय है। भगवान् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है, क्योंकि उनके सारे कार्य उनके द्वारा नियुक्त की गई विभिन्न शक्तियों द्वारा सम्पन्न होते हैं। फिर भी वे अपनी दिव्य-लीलाओं का प्रदर्शन करते समय कुछ स्वैच्छिक जिम्मेदारियाँ निभाते हैं। बालक के रूप में वे ग्वाल-बाल की भूमिका निभा रहे थे। उन्होंने नन्द महाराज के पुत्र के रूप में अपनी जिम्मेदारी बहुत अच्छे से निभाई। इसी प्रकार जब वे महाराज वसुदेव के पुत्र-रूप में क्षत्रिय की भूमिका निभा रहे थे, तब उन्होंने शूरवीर क्षत्रिय की सम्पूर्ण निपुणता दिखाई। प्रायः सदा ही, क्षत्रिय राजा को युद्ध जीतकर या अपहरण करके पत्नी प्राप्त करनी होती थी। इस तरह का आचरण क्षत्रिय के लिए प्रशंसनीय होता था, क्योंकि क्षत्रिय को अपनी होनेवाली पत्नी के समक्ष बहादुरी का प्रदर्शन करना होता था, जिससे क्षत्रिय पुत्री अपने होनेवाले पति के पराक्रम को देख सके। यहाँ तक कि भगवान् श्रीरामचन्द्र को भी अपने विवाह के समय ऐसे ही शौर्य का प्रदर्शन करना पड़ा। उन्होंने सबसे मजबूत धनुष, हरधनुर् को तोड़ा और समस्त ऐश्वर्य की जननी सीतादेवी को वरण किया। क्षत्रियत्व का प्रदर्शन विवाहोत्सव के समय ही होता है और ऐसे युद्ध में कोई दोष नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने इस उत्तरदायित्व को भी पूरी तरह निभाया, क्योंकि यद्यपि उनकी सोलह हजार से अधिक पत्नियाँ थीं, किन्तु उन्होंने हर एक को पाने के लिए वीर क्षत्रिय की भाँति युद्ध किया था। सोलह हजार पत्नियों के लिए सोलह हजार बार युद्ध करना भगवान् के लिए ही सम्भव था। इसी प्रकार उन्होंने प्रत्येक लीला के प्रत्येक कार्य में पूरी जिम्मेदारी दिखाई।

चौदहवाँ गुण है, ज्ञान, जिसे पुनः पाँच उपविभागों में बाँटा जा सकता है, अर्थात्—(१) बुद्धि, (२) कृतज्ञता, (३) देश काल तथा वस्तु के अनुसार परिस्थितियों को समझने की शक्ति, (४) हर वस्तु का पूर्ण ज्ञान; तथा (५) आत्मज्ञान। जो मूर्ख होते हैं, वे ही अपने उपकारियों के प्रति कृतघ्न होते हैं। लेकिन भगवान् तो खुद के अतिरिक्त अन्य किसी से कोई लाभ नहीं चाहते, क्योंकि वे स्वयंसम्पूर्ण हैं; फिर भी वे अपने भक्तों की अनन्य सेवा से लाभान्वित अनुभव करते हैं। भगवान् अपने भक्तों के प्रति ऐसी सरल, अप्रतिबन्धित सेवा के लिए कृतज्ञता का अनुभव करते हैं और सेवा द्वारा प्रतिदान करते

हैं, यद्यपि भक्त के मन में ऐसी कोई इच्छा नहीं रहती। भगवान् की दिव्य सेवा, भक्त के लिए अपने में ही दिव्य लाभ है, अतएव भक्त को भगवान् से किसी वस्तु की आशा नहीं होती। वैदिक नीति-वाक्य, *सर्वं खल्विदं ब्रह्म*, के आधार पर भगवान् अपने तेज की सर्वव्यापी किरणों के द्वारा, जिन्हें ब्रह्मज्योति कहते हैं, प्रत्येक वस्तु के भीतर या बाहर, सर्वव्यापी भौतिक आकाश की तरह, व्याप्त हैं और इस तरह वे सर्वज्ञ भी हैं।

जहाँ तक भगवान् के सौन्दर्य की बात है, उनमें कुछ विशिष्ट लक्षण पाये जाते हैं, जिनसे वे अन्य सारे जीवों से पृथक् हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त, उनके कतिपय विशिष्ट सुन्दर लक्षण अत्यन्त आकर्षक हैं, जिनसे परमेश्वर की सर्वसुन्दर कृति, राधारानी का मन भी आकृष्ट हो जाता है। अतएव वे मदनमोहन कहलाते हैं, अर्थात् वे जो कामदेव के मन को भी आकृष्ट करनेवाले हैं। श्रील जीव गोस्वामी प्रभु ने भगवान् के अन्य दिव्य गुणों का भी विश्लेषण किया है और वे इसकी पुष्टि करते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् (परब्रह्म) हैं। वे अपनी अचिन्त्य शक्तियों के कारण सर्वशक्तिमान हैं, अतएव वे योगेश्वर अर्थात् समस्त यौगिक शक्तियों के सर्वोपरि स्वामी हैं। योगेश्वर होने के कारण उनका शाश्वत स्वरूप आध्यात्मिक है—शाश्वतता, ज्ञान तथा आनन्द का सम्मिश्रण है। अभक्तगण उनके ज्ञान की गतिशील प्रकृति को नहीं समझ सकते, क्योंकि वे उनके ज्ञान के शाश्वत रूप तक पहुँचकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। सारे महापुरुष उनके समान ज्ञानवान बनने की आकांक्षा करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्य सारा ज्ञान सदैव अपर्याप्त, लोचशील तथा माप्य है, किन्तु भगवान् का ज्ञान सदैव स्थिर तथा अगाध है। श्रील सूत गोस्वामी ने *भागवत* में इसकी पुष्टि की है कि यद्यपि द्वारका के निवासी नित्य ही भगवान् के दर्शन करते थे, तो भी वे उन्हें पुनः पुनः देखने के लिए उत्सुक रहते थे। जीव भगवान् के गुणों की सराहना अन्तिम लक्ष्य के रूप में तो कर सकते हैं, किन्तु वे कभी उनकी समता नहीं कर सकते। यह भौतिक जगत महत्-तत्त्व की उपज है, जो भगवान् की कारण सागर में *योगनिद्रा* की स्वप्नावस्था है; फिर भी यह सारी सृष्टि उन्हीं से उत्पन्न प्रतीत होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान् की स्वप्नावस्था भी वास्तविक अभिव्यक्ति है। अतएव वे हर वस्तु को अपने दिव्य नियंत्रण में ला सकते हैं। वे जब कभी और जहाँ कहीं भी प्रकट होते हैं, अपने पूर्ण रूप में प्रकट होते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सब होते हुए, भगवान् सृष्टि का व्यापार चालू रखते हैं और ऐसा करते हुए वे अपने उन शत्रुओं को भी मोक्ष प्रदान करते हैं, जिन्हें उन्होंने स्वयं मारा है। वे सर्वोपरि मुक्तात्मा के लिए भी आकर्षक हैं, अतएव वे सभी देवताओं में महान् ब्रह्मा तथा शिव जैसे देवताओं द्वारा भी पूज्य हैं। यहाँ तक कि अपने पुरुष अवतार में भी वे सृजन-शक्ति के स्वामी हैं। भौतिक सृजनशक्ति उनकी अध्यक्षता में कार्यशील रहती है, जिसकी पुष्टि भगवद्गीता (९.१०) में हुई है। वे भौतिक शक्ति के नियंत्रक कुन्जी समान हैं और असंख्य ब्रह्माण्डों में भौतिक शक्ति के नियंत्रण हेतु वे समस्त ब्रह्माण्डों में असंख्य अवतारों के मूल कारण हैं। अन्य ब्रह्माण्डों में अन्य अवतारों के अतिरिक्त, केवल एक ब्रह्माण्ड में मनु के पाँच लाख से अधिक अवतार होते हैं। लेकिन आध्यात्मिक जगत में, जो महत् तत्त्व के परे है, अवतारों का कोई प्रश्न ही नहीं उठता—लेकिन विभिन्न वैकुण्ठ-लोकों में भगवान् के पूर्ण अंश होते हैं। वैकुण्ठलोक में महत् तत्त्व के असंख्य ब्रह्माण्डों के भीतर पाये जानेवाले ग्रहों से तिगुनी संख्या में ग्रह हैं। और भगवान् के जितने भी नारायण-रूप हैं, वे सब उनके वासुदेव-स्वरूप के अंश हैं। इस तरह वे एक साथ वासुदेव, नारायण तथा कृष्ण हैं। वे श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव हैं—एक में सब। अतएव कोई चाहे कितना महान् क्यों न हो, भगवान् के गुणों की गणना नहीं कर सकता।

आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चामरोत्तमम् ।

देवान् पितृनृषीन् साधून् सर्वान् वर्णास्तथाश्रमान् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

आत्मानम्—स्वयं; च—भी; अनुशोचामि—शोक कर रही हूँ; भवन्तम्—आप; च—भी; अमर-उत्तमम्—देवताओं में श्रेष्ठ; देवान्—देवताओं के लिए; पितृन्—पितृलोक के निवासियों के लिए; ऋषीन्—ऋषियों के लिए; साधून्—भक्तों के लिए; सर्वान्—सभी; वर्णान्—जातियों के लिए; तथा—और; आश्रमान्—मानव समाज के चारों आश्रमों के लिए।

हे देवताओं में श्रेष्ठ, मैं अपने विषय में तथा आपके विषय में और उसी के साथ ही साथ सभी देवताओं, ऋषियों, पितृलोक के निवासियों, भगवद्भक्तों तथा वर्णाश्रम-धर्म के पालक सभी मनुष्यों के विषय में सोच रही हूँ।

तात्पर्य : मानव जीवन को पूर्ण बनाने में मनुष्यों, देवताओं, ऋषियों, पितृलोक के निवासियों, भगवद्भक्तों तथा वर्णाश्रम-धर्म की वैज्ञानिक पद्धति का योगदान रहता है। अतएव मानव जीवन तथा

पशुजीवन में जो अन्तर है, वह वर्णाश्रम की वैज्ञानिक प्रणाली से प्रारम्भ होता है जिसका मार्गदर्शन देवताओं के लिए ऋषियों के अनुभव द्वारा होता है और जो धीरे-धीरे उठता हुआ परम पूर्ण सत्य, पूर्ण परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ नित्य सम्बन्ध की स्थापना तक पहुँचता है। जब ईश्वरकृत वर्णाश्रम धर्म, जो पशु-चेतना का मानव-चेतना में और मानव-चेतना का ईश्वरीय-चेतना में विकास के निमित्त होता है, मूर्खों की प्रगति के द्वारा छिन्न कर दिया जाता है, जिससे शान्तिपूर्ण प्रगतिशील जीवन का सारा ढाँचा चरमरा जाता है। कलियुग में, विषधर सर्प का पहला आक्रमण ईश्वरकृत वर्णाश्रम धर्म पर होता है। फलस्वरूप योग्य ब्राह्मण शूद्र कहलाने लगता है और शूद्र की योग्यता वाला ब्राह्मण बन जाता है। यह सब जन्म के झूठे अधिकार से होता है। जन्म के दावे से ब्राह्मण बनना प्रामाणिक नहीं है, भले ही इससे किसी एक शर्त की पूर्ति होती हो। ब्राह्मण की असली योग्यता तो मन तथा इन्द्रियों को वश में करना तथा धैर्य, सरलता, स्वच्छता, ज्ञान, सत्य, भक्ति तथा वैदिक वाङ्मय के प्रति श्रद्धा करना इत्यादि है। आधुनिक युग में, आवश्यक योग्यता पर विचार नहीं किया जाता, यहाँ तक कि *रामचरितमानस* के अत्यन्त लोकप्रिय रचयिता द्वारा भी झूठे जन्म-अधिकार को समर्थन दिया जाता है।

यह सब कलियुग का प्रभाव है। अतएव गोरूप पृथ्वी माता दयनीय दशा पर शोक व्यक्त कर रही थीं।

ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्ष-
 कामास्तपः समचरन् भगवत्प्रपन्नाः ।
 सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय
 यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥ ३२ ॥
 तस्याहमब्जकुलिशाङ्कुशकेतुकेतैः
 श्रीमत्पदैर्भगवतः समलङ्कृताङ्गी ।
 त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं
 लोकान् स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा-आदयः—ब्रह्मा जैसे देवता; बहु-तिथम्—अनेक दिनों तक; यत्—लक्ष्मी देवी का; अपाङ्ग-मोक्ष—कृपा-कटाक्ष;
 कामाः—कामना करनेवाला; तपः—तपस्या; समचरन्—सम्पन्न करते हुए; भगवत्—भगवान् की; प्रपन्नाः—शरणागत; सा—
 वे (लक्ष्मी); श्रीः—लक्ष्मीजी; स्व-वासम्—अपने धाम को; अरविन्द-वनम्—कमलों के वन को; विहाय—छोड़कर; यत्—

जिनका; पाद—पाँव; सौभाग्य—कल्याणमय; अलम्—निःसंकोच भाव से; भजते—पूजती हैं; अनुरक्ता—आकृष्ट हुईं; तस्य—उनका; अहम्—मैं; अब्ज—कमल पुष्प; कुलिश—वज्र; अङ्कुश—हाथी हाँकने का अंकुश; केतु—झंडा; केतैः—चिह्न; श्रीमत्—समस्त ऐश्वर्य के स्वामी; पदैः—चरणों के तलवों से; भगवतः—भगवान् का; समलङ्कृत—अङ्गी—इस तरह से सज्जित देहवाले; त्रीन्—तीन; अति—एक से एक बढ़कर; अरोचे—सुन्दरतापूर्वक अलंकृत; उपलभ्य—प्राप्त करके; ततः—तत्पश्चात्; विभूतिम्—विशिष्ट शक्तियों को; लोकान्—लोकों को; सः—उन्होंने; माम्—मुझको; व्यसृजत्—त्याग दिया; उत्सयतीम्—गर्व का अनुभव करते हुए; तत्—अन्ते—अन्त में।

सौभाग्य की देवी लक्ष्मीजी, जिनकी कृपा-कटाक्ष के लिए ब्रह्मा जैसे देवता तरसा करते थे और जिनके लिए वे दिन में अनेक बार भगवान् के शरणागत होते थे, वे कमल-वन के अपने निवासस्थान को त्याग कर भी भगवान् के चरणकमलों की सेवा में संलग्न हुई थीं। मुझे वे विशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त हुई थीं, जिनसे मैं ध्वज, वज्र, अंकुश तथा कमल चिह्नों से, जो भगवान् के चरणकमलों के चिह्न हैं, अलंकृत होकर तीनों लोकों की सम्पत्ति को परास्त कर सकती थी। लेकिन अन्त में, जब मैंने अनुभव किया कि मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ, तब भगवान् ने मुझे त्याग दिया।

तात्पर्य : संसार का सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य भगवान् की कृपा से ही बढ़ सकता है, किसी मानवकृत योजना से नहीं। जब भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथ्वी पर विद्यमान थे, तब उनके चरणकमल के विशिष्ट चिह्न धूलि पर अंकित होते थे, जिस विशेष कृपा के कारण सारी पृथ्वी यथासम्भव भरी-पूरी रहती थी। दूसरे शब्दों में, नदियाँ, समुद्र, वन, पर्वत तथा खानें, जो मनुष्यों तथा पशुओं की आवश्यकताओं को पूरा करनेवाली हैं, अपने-अपने कर्तव्यों को भलीभाँति पूरा कर रही थीं। अतएव पृथ्वी की समृद्धि ब्रह्माण्ड के तीनों के अन्य सभी ग्रहों की समृद्धि से बढ़कर थी। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह पृथ्वी पर भगवान् से सदैव कृपा बनाये रखने की याचना करे, जिससे हमें उनकी अहैतुकी कृपा प्राप्त हो और हमें जीवन की सारी सुविधाएँ प्राप्त हों, जिससे हम सुखी रहें। कोई यह प्रश्न कर सकता है कि जब पृथ्वी पर अपना कार्य पूर्ण हो जाने पर भगवान् पृथ्वी छोड़कर अपने धाम चले जाते हैं, तो फिर हम उन्हें किस तरह रोक सकते हैं? इसका उत्तर यह होगा कि भगवान् को रोकने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। भगवान् सर्वव्यापी होने के कारण, हमारे बीच उपस्थित हो सकते हैं, यदि हम उन्हें चाहते हैं। यदि हम श्रवण, कीर्तन, स्मरण इत्यादि द्वारा उनकी भक्ति में अनुरक्त रहें, तो वे सदैव हमारे साथ रह सकते हैं, क्योंकि वे सर्वव्यापी हैं।

संसार की कोई ऐसी वस्तु नहीं जिससे भगवान् जुड़े हुए न हो। हमें चाहिए कि हम जुड़ने के इस सम्बन्ध को ढूँढ निकालें और अपराधरहित सेवा द्वारा उनसे जुड़ जाँय। हम उनके दिव्य शब्द उच्चारण द्वारा उनसे जुड़ सकते हैं। भगवान् का पवित्र नाम तथा स्वयं भगवान् एक ही हैं और जो कोई निरपराध भाव से भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, उसे तुरन्त अनुभूति होती है कि भगवान् उसके समक्ष उपस्थित हैं। यहाँ तक कि रेडियो-ध्वनि के स्पन्दन से हम ध्वनि की आंशिक अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं और दिव्यता के ध्वनि को फिर से उच्चारित करके हम निश्चय ही भगवान् की उपस्थिति का अनुभव कर सकते हैं। इस युग में, जबकि प्रत्येक वस्तु कलि के कल्मष से दूषित है, शास्त्रों का आदेश है तथा भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने भी यही उपदेश दिया है कि भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन से हम तत्काल कल्मष से रहित हो सकते हैं और क्रमशः दिव्य पद तक ऊपर उठकर भगवद्धाम वापस जा सकते हैं। भगवन्नाम का निरपराध रूप से कीर्तन करनेवाला भक्त साक्षात् भगवान् के समान शुभ होता है और संसार भर में भगवद्भक्तों के विचरण करने से संसार के सारे कष्ट दूर हो सकते हैं। केवल भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन के प्रचार-प्रसार द्वारा ही हम कलियुग के दुष्प्रभावों से बच सकते हैं।

यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञा-
मक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ।
त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण
सम्पादयन् यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; वै—निश्चय ही; मम—मेरा; अति-भरम्—अत्यन्त बोझिल; आसुर-वंश—नास्तिक; राज्ञाम्—राजाओं का; अक्षौहिणी—एक अक्षौहिणी (एक अक्षौहिणी में २१,८७० रथ, इतने ही हाथी, १,०९,३५० पैदल सैनिक तथा ६५,६१० अश्वारोही होते हैं); शतम्—ऐसी सैकड़ों अक्षौहिणी; अपानुदत्—नष्ट कर डाली; आत्म-तन्त्रः—आत्म-निर्भर; त्वाम्—तुमको; दुःस्थम्—कठिनाई में डालकर; ऊन-पदम्—खड़े होने की शक्ति से रहित; आत्मनि—आन्तरिक; पौरुषेण—शक्ति के बल पर; सम्पादयन्—सम्पन्न करने के लिए; यदुषु—यदुवंश में; रम्यम्—दिव्य रूप से सुन्दर; अबिभ्रत्—स्वीकार किया; अङ्गम्—शरीर को।

हे धर्म-पुरुष, मैं नास्तिक राजाओं द्वारा नियोजित अत्यधिक सैन्य-समूह के भार से बोझिल हो उठी थी और अब भगवान् की कृपा से उससे उबर सकी हूँ। इसी प्रकार आप भी कष्टप्रद अवस्था में थे और खड़े भी नहीं हो सकते थे। इस तरह आपको भी उबारने के लिए यदुवंश में वे अपनी अन्तरंगा शक्ति से अवतरित हुए थे।

तात्पर्य : असुरगण दूसरे के सुख को लूटकर भी इन्द्रियतृप्ति का जीवन बिताना चाहते हैं। इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए असुरगण, विशेषतया नास्तिक राजा या राज्य के प्रशासनिक अधिकारी, अपने को अत्यन्त घातक अस्त्रों से सज्जित करके शान्तिपूर्ण समाज में युद्ध कराना चाहते हैं। उन्हें आत्मश्लाघा के अतिरिक्त जीवन में अन्य कोई अभिलाषा नहीं रहती। इस प्रकार पृथ्वी माता, सैन्यशक्ति में अत्यधिक वृद्धि के कारण अत्यधिक बोझिल अनुभव करती है। असुरों की वृद्धि होने से धर्मात्मा लोग, विशेषतया भक्त या देवता, दुखी होते हैं।

ऐसी परिस्थिति में, भगवान् इन अवांछित असुरों को नष्ट करने तथा धर्म की पुनःस्थापना करने के लिए अवतरित होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का यही उद्देश्य था और इसे उन्होंने पूरा किया।

का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य
प्रेमावलोकुरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ।
स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां
रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्कितायाः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

का—कौन; वा—या तो; सहेत—सहन कर सकता है; विरहम्—वियोग; पुरुष-उत्तमस्य—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का; प्रेम—प्रेममयी; अवलोक—चितवन; रुचिर-स्मित—मोहक हँसी; वल्गु-जल्पैः—हृदय को भानेवाली बोली; स्थैर्यम्—गम्भीरता; समानम्—प्रणय-सम्बन्धी क्रोध; अहरत्—जीता; मधु—प्रियतमा; मानिनीनाम्—सत्यभामा जैसी स्त्रियों का; रोम-उत्सवः—प्रसन्नता से रोमांच; मम—मेरा; यत्—जिसका; अङ्घ्रि—पाँव; विटङ्कितायाः—से अंकित।

अतएव ऐसा कौन है, जो उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विरह की व्यथा को सह सकता है? वे अपनी प्रेमभरी मीठी मुस्कान, सुहावनी चितवन तथा मीठी-मीठी बातों से सत्यभामा जैसी प्रियतमाओं की गम्भीरता तथा प्रणय क्रोध (हाव-भाव) को जीतनेवाले थे। जब वे मेरी (पृथ्वी की) सतह पर चलते थे, तो मैं उनके चरणकमल की धूल में धँस जाती थी और फिर घास से आच्छादित हो जाती थी, जो हर्ष से उत्पन्न मेरे शरीर पर रोमांच जैसा था।

तात्पर्य : भगवान् तथा भगवान् की हजारों रानियों के मध्य, घर से जाने पर, वियोग की अनेक सम्भावनाएँ थीं, लेकिन जहाँ तक पृथ्वी का सम्बन्ध है, भगवान् के चरणकमलों को तो पृथ्वी पर पड़ना ही था, अतएव वियोग की कोई सम्भावना न थी। किन्तु जब भगवान् पृथ्वी को छोड़कर अपने दिव्य-धाम चले गये, तो पृथ्वी की वियोग-भावना अत्यन्त तीव्र हो गई।

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ।

परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तयोः— उनके मध्य; एवम्— इस प्रकार; कथयतोः— वार्ता में संलग्न; पृथिवी— पृथ्वी; धर्मयोः— तथा धर्म दोनों; तदा— उस समय; परीक्षित्— राजा परीक्षित; नाम— नामक; राज-ऋषिः— राजाओं में ऋषि-तुल्य; प्राप्तः— आ गये; प्राचीम्— पूर्व-वाहिनी; सरस्वतीम्— सरस्वती नदी के तट पर।

जब पृथ्वी तथा धर्म-पुरुष इस प्रकार बातों में संलग्न थे, तो राजर्षि परीक्षित पूर्व की ओर बहनेवाली सरस्वती नदी के तट पर पहुँच गये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के अन्तर्गत 'परीक्षित ने कलियुग का सत्कार किस तरह किया' नामक सोलहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।